



सर्वोन्कुष्ठ धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहंतुकी विघ्नशूल्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यथ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष ६ } गोरावद ४७४, मास—हृषिकेश ६, वार-प्रद्युम्न } संख्या ३
} मंगलवार, ३१ अगस्त, सम्वत् २०१७, १६ अगस्त १९६० }

श्रीश्रीराधिकाष्टकम्

[श्रीकृष्णदास-कविराज-गोस्यामि-विरचितम्]

कुंकुमाक्षत-कोचनाद्वज-गर्वहारि-गौरभा, पीतमांचिताद्वज-गंधकोर्ति-निनिद-सौरभा ।
 वल्लवेश-सुनु-सर्व-वांकितार्थ-साधिका, महामात्रम-पादपद्म दास्यदास्तु राधिका ॥१॥
 कौरविन्द-कान्ति-निनिद-चित्र-पट-शाठिका, कृष्ण-मत्तमृग-केजि-फुल्ल-पुष्प-वाटिका ।
 कृष्ण-नित्य-संगमार्थ-पदावन्धु-राधिका, महामात्रम-पादपद्म-दास्यदास्तु राधिका ॥२॥
 सौकुमार्य-सुष्टु-वल्लवालि-कीर्ति-निग्रहा, चन्द्रचन्द्रनोत् पलेन्दु-सेव्य-शीत-विग्रहा ।
 स्वाभिमर्थ-वल्लवीश-काम-साप-वाधिका, महानात्रम-पादपद्म-दास्यदास्तु राधिका ॥३॥
 विश्ववन्द्य-यौवताभिवन्दितापि या रमा, रूप-नव्य-यौवनादि-सम्पदा न यत्समा ।
 शीज-हाहू लीलया च सा यतोऽस्ति नाधिका, महामात्रम-पादपद्म-दास्यदास्तु राधिका ॥४॥
 राम-खास्य-गीत-नर्म-सत्कलालि-पंडिता, प्रेम-रम्य रूप-वेश-सद्गुणालि-मंडिता ।
 विश्व-नव्य-गोप-योषिदालितोऽपि याधिका, महामात्रम-पादपद्म-दास्यदास्तु राधिका ॥५॥

नित्य-नव्य-रूप-केलि-कृष्णभाव सम्पदा, कृष्ण-राग-वन्य-गोप-यौवतेषु कम्पदा ।
 कृष्ण-रूप-वेश-केलि-लग्न-सत्समाधिका, महामात्म-पादपद्म-दास्यदास्तु राधिका ॥६॥
 स्वेद-कम्प-कण्ठकाञ्चु-गदगदादि-संचिता-मर्थ-हर्ष वामलादि-भाव भूषणांचिता ।
 कृष्ण-नेत्र-तोषि-रत्न-मरणालि-दाधिका, महामात्म-पादपद्म-दास्यदास्तु राधिका ॥७॥
 याह्याद्-कृष्ण-विप्रयोग-सन्ततोदिता, नेक-दैन्य-चापलादि-भाववृन्द-मोदिता ।
 यत्न लाघ-कृष्ण-संग-निर्गताखिलाधिका, महामात्म-पादपद्म-दास्यदास्तु राधिका ॥८॥
 अष्टकेन यस्त्वनेन नौति कृष्ण-वद्वर्तमां, दशंनेऽपि शैलजादि-योषिदालि-दुर्लभाम् ।
 कृष्ण संग-नन्दितात्म-दास्य-सीधु-माजनं, तं करोति नन्दितालि-संचयाशु सा जनम् ॥९॥

अनुवाद—

जिनके अंगकी गौरकान्ति कुंकुंमलिप्त स्वर्ण-कमल की कान्तिके गर्वको भी खण्डित करती है, जिनके अंगकी सुगंधि कुंकुंमयुक्त पद्म-पुष्पकी गंधको कीचिको भी धंस बरती है एवं जो नन्दनन्दन श्रीकृष्णकी समरत अभिलाषाओंको पूर्ण करती है, वे श्रीमती राधिका मुझे अपने चरण-कमलोंकी दासता प्रदान करें ॥१॥

जिनकी पहुँ साढ़ी मूँगेकी कान्तिकी निन्दा करती है, जो कृष्णरूप मत्ता भ्रमरके विहारके लिये पुष्प-बाटिका स्वरूप है तथा कृष्णका संग प्राप्त करनेके लिये जो नित्यप्रति सूर्यदेवकी आराधनी करती है, वे श्रीमती राधिका मुझे अपने चरणकमलोंकी दासता प्रदान करें ॥२॥

जिनके सुकोमल अंग पल्लव-श्रेणीकी कोमलता को भी मात करते हैं, चन्द्रमा, चन्दन, कमल और कपूर आदि निखिल शीतल पदार्थ भी जिनके सुशीतल अङ्गोंकी सेवा करते हैं और जो अपने अङ्ग-स्पर्शरूप सुधा द्वारा गोपीवल्लभ श्रीकृष्णके काम-रूपी तापको दूर करती है, वे श्रीमती राधिका मुझे अपने चरणकमलोंकी दासता प्रदान करें ॥३॥

जिन लक्ष्मीदेवीके अपूर्व सुन्दर रूप और नव-यौवन आदिका दर्शन कर तथा अत्यन्त मधुर-स्वभाव जनित जिनकी प्रेम लीलाका दर्शन कर विस्मित हुई निखिल विश्ववन्य सुन्दरियाँ भी जिनकी वन्दना

करती हैं, वे परम सौभाग्यवती लक्ष्मीदेवी भी जिन श्रीमतीराधिकाके समान नहीं हैं, एवं जिन श्रीराधिका से बढ़ कर कहीं भी कोई गुण-सम्पन्ना रमणी नहीं है, वे श्रीमती राधिका मुझे अपने चरण-कमलोंकी दासता प्रदान करें ॥४॥

जो रासकीदामें नृत्य, गीत और परिहास आदि अति उश्ट्र रस-कलाओंमें पारदर्शी—परम पण्डिता हैं, जो प्रेम-मरिडित मनोहर रूप, वेश और विविध सद्गुणावलियोंसे विभूषित हैं, तथा जो विश्ववन्दिता नवीन यौवनसम्पन्ना गोपललनाओंमें सथमें सब प्रकारसे बढ़-चढ़ कर हैं, वे श्रीमती राधिका मुझे अपने चरणकमलोंकी दासता प्रदान करें ॥५॥

जो नित्य नवीन रूप, केलि और कृष्ण-भाव—अपनी इस सम्पत्ति द्वारा श्रीकृष्णके चरणोंमें हृद अनुरागवाली स्वपन्ककी गोप-रमणियोंके शरीरमें हर्ष-तिरेक द्वारा तथा विपक्षकी युवतियोंके शरीरमें कातरताजनित कम्प उत्पन्न करती हैं और जिनका चित्त श्रीकृष्णके रूप, वेश और केलिमें ही सदा-सर्वदा एकाप्रभावसे संलग्न रहता है, वे श्रीमती राधिका मुझे अपने चरणकमलोंकी दासता प्रदान करें ॥६॥

जो स्वेद, कम्प, पुलक, अश्र और रोमांच आदि सात्त्विक विकारों द्वारा मुशोभित हैं, जो क्रोध, हर्ष और वामता आदि भावोंके आभूषणोंसे सर्वदा विभूषित रहती हैं और जो कृष्णके नयनकमलोंको

आनन्द-प्रदान करनेवाले इतके आभूषणोंसे सुसज्जित रहती हैं, वे श्रीमती राधिका मुक्ते अपने चरणकमलों की दासता प्रदान करें ॥७॥

जो अद्वैताण्का भी कृष्ण-विरह मनेमें असमर्थ होकर दैन्य और चापल्यादि भावों द्वारा कातर हो पड़ती हैं और उस समय स्वकृत या कृष्णकृत दृती-प्रेरण आदि कार्योंके द्वारा श्रीकृष्ण-संग प्राप्तकर अपनी सारी मनःपीड़ा दूर करती हैं, वे श्रीमती

राधिका मुक्ते अपने चरणकमलोंकी दासता प्रदान करें ॥८॥

पार्वती आदि देवियोंको भी जिनका दर्शन अतीव दुर्लभ है, उन कृष्ण-प्रेयसी श्रीमती राधिकाका इस अष्टक द्वारा जो व्यक्ति स्तव करता है, अपनी सखियोंसे परिवेष्टित होकर श्रीराधिका श्रीकृष्णके सहित आनन्दित होकर उस व्यक्तिको शीघ्र ही अपना दास्यमृत प्रदान करती हैं ॥९॥

सच्चे महाजन कौन हैं ?

महत् व्यक्ति को 'महाजन' कहते हैं। पारमार्थिक और जागतिक विचारसे 'महत्' के सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी धारणाएँ विद्यमान हैं। बढ़-जीव सांसारिक सुखोंको ही सब कुछ समझता है और उनको प्राप्त करना ही जीवनका मूल उद्देश्य समझता है। ऐसे लोगों की हृषिमें उनके सांसारिक भोगोंको प्रदान करनेवाला अथवा उनको प्राप्त करनेमें सहायता करनेवाला व्यक्ति ही महान् व्यक्ति अर्थात् 'महाजन' है। व्यवसायीके लिये ऋण देनेवाले व्यक्ति महाजन हो सकते हैं, भोगमें तत्पर कर्मीके लिये जैमिनी आदि ऋषि या भिन्न-भिन्न मतपोषक धर्म-शास्त्रकारण्य और चितका निरोध करनेकी अभिलाषा रखनेवालोंके लिये पतंजलि आदि ऋषि महाजन हो सकते हैं, शुष्क ज्ञानियोंके लिये निरीश्वर कपिल या वशिष्ठ, दुर्वासा या दत्तात्रेय आदि केवल दैत्यादी, महाजन हो सकते हैं, रजस्तमोगुण मिश्रित लोगोंके निकट पाश्चायिक सम्पत्तिके अहंकारमें चूर विष्णु-विरोधी हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिषु, रावण और उसका पुत्र मेघनाद, जरामन्थ आदि राजन्यवर्ग, एकलव्य व कर्णादि गुरुभक्त; स्त्री संगाभिलाषी भोक्ताभिमानियोंके निकट दक्ष आदि स्त्री-पूजक प्रजापतिगण, एवं जागतिक लोगोंके निकट दैहिक व मानसिक

रोग, शोक, दुःख, भय या नश्वर अभावोंको दूर करनेवाले, उनको दूर करनेमें सहायक अथवा उनमें आसक्त व्यक्ति महाजन माने जा सकते हैं। माया विमोहित जीवोंके निकट विष्णु सम्बन्धरहित 'दार्शनिक', 'वैज्ञानिक', 'ऐतिहासिक', 'साहित्यिक', 'कवि', 'वाग्मी', 'समाज पति', या देश नेता—ये लोग महाजन हो सकते हैं, आत्मज्ञानरहित मूर्ख, वंचित और दुर्भागी व्यक्तियोंके निकट परमार्थभूत आत्म-बृति—भगवद्गुरुको हाइ-चामके प्रति आसक्ति या मोहमात्र माननेवाले तथा केवल शौक्र-वंशाके नाम पर अपनेको भक्त और गुरु अभिमान करनेवाले वंचक, भाडाटिया, अर्थ लिप्सु व्यक्ति, परम भक्त श्रीहरिदास-के भावों और हरिभजनकी चेष्टाओंके वाहानुकरणकारी, ढोगी-विप्र जैसे सच्चे संतोंके विरोधी, लोगोंको ठगनेकी नानाप्रकारकी विद्याओंको जाननेवाले, पूतना, तृनायर्ची, वत्स, वक, अव, धेनुक, कालीय, प्रलम्ब प्रभृति असुरगण अथवा विष्णु-विरोधी पौड़क, शृगाल-वासुदेव, देत्यगुरु शुक्र, नास्तिक-चावर्चीक, वेण, सुग्रत, अहंत (जैन) आदि एवं गौर-कृष्णके वास्तव-सत्य तत्त्व या उनके परमेश्वर होनेमें अविश्वास करनेवाले वे मनोधर्मी व्यक्ति जो उन अवतारोंकी नकलकर अपनेको ही अवतार प्रचार

करते हैं, वे भले ही महाजन कहलाये, परन्तु निरत्त-
कुहक परमसत्य या वास्तव-वस्तु प्रतिपादनकारी
निर्मात्सर श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

प्रायेण्येऽ तदिदं न महाजनोऽयं
देव्या विमोहित मतिर्वत् माययाऽलम् ।
ब्रयां जडीकृत मतिर्मुखु मुष्यितायां
वैतानिके भर्ति कर्मणि युज्यमानः
(भा-१/३१२५)

अर्थात्—जगतमें जो सब कर्मी ‘महाजन’ माने
जाते हैं, वे धर्मके सम्बन्धमें भायण देनेवाले आत्म-
ज्ञानरहित व्यक्ति भगवत् भक्तिके महास्मयको नहीं
जानते । उनकी बुद्धि-त्रिगुणमयी वैष्णवी-माया
द्वारा विमोहित होती है; इसीलिये वे मायातीत भग-
वत् भक्तिका अनादर करते हैं तथा प्राकृत उपासना-
मूलक विस्तारशील कर्मकारणमें नियुक्त पर्वं माया-
जाल में बैधे हुए होते हैं । ऐसे-ऐसे महाजनोंकी मति
ऋक्-साम-वजुर्वेदके आपात-रमणीय मधुर अर्थवाद-
वाक्य द्वारा जडीकृत हुई होती है; ये लोग मायामुख
जीवोंकी धारणासे भले ही ‘महाजन’ कहे जाँय, परन्तु
ये लोग पुरुषोत्तम श्रीभगवानकी नित्य-सेवामें बुद्धि
युक्त कदापि नहीं हैं ।

जगतके लोग ‘कर्मवीर’ कहे जा सकते हैं, ‘धर्म-
वीर’ के नाम पर सम्मान पा सकते हैं, ‘ज्ञानवीर’ के
नाम पर प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकते हैं तथा वैराग्य और
त्यागका आदर्श कहला कर पूजित हो सकते हैं,
परन्तु श्रीमद्भागवतमें भगवानके चरणकमलोंकी
सेवासे रहित वैसे-वैसे कर्मवीर, ज्ञानवीर और धर्म-
वीरोंको जीवन्मृत कहा गया है—

नेह यत् कर्म धर्मवीर न विरागाय कल्पते ।
न तीर्थं पादसेवायै जीवन्मृति मृतो हि सः ॥

अर्थात्—इस जगतमें जो कर्मवीर ‘धर्म’ के
लिये कर्म नहीं करते हैं, जो धर्मवीर वैराग्यके लिये
धर्म नहीं करते हैं, अथवा जो त्याग वीर ‘श्रीचिष्णु-
की प्रीतिके लिये भोगोंका त्याग नहीं करते, वे सब-

के-सब ‘जीवन्मृत’ हैं । वास्तवमें हरिको सम्मुप्र करने-
की प्रवृत्तिका नाम ही ‘सेवा’ है, इसके अतिरिक्त
जिस कर्ममें, जिस धर्ममें और जिस त्यागमें श्री-
कृष्ण-प्रीतिका सम्बन्ध नहीं है, वह देशसेवा, लोक-
सेवा, समाजसेवा, दब छुल या जातिगत आदैव-
वर्णाश्रमकी सेवा, रोगीकी सेवा, दरिद्रोंकी सेवा,
निर्धन-सेवा या धनवानोंकी सेवा, स्त्री जातिकी सेवा,
नाना प्रकारकी देव-सेवा, यह सब कुछ संसारमें
श्रेष्ठगुण सम्पत् या “प्रातः स्मरणीय कार्य” के नाम
से प्रचारित होने पर भी वास्तवमें इन्द्रिय तोषण या
भोग ही है । जगतका यह दुर्भाग्य है कि जीवोंके
निकट ऐसे-ऐसे इन्द्रिय-सुखोंकी प्राप्तिमें सहायक वक्ता,
प्रचारक या शास्त्रकारगण ही “महाजन” कहे जाते
हैं ।

प्रकृतिको ही सब कुछ माननेवाले, वाह जगत-
का दर्शन करनेवाले, इन्द्रियोंके दाम भवरोगप्रभृत
जीव अपनी विकृत बुद्धिद्वारा सच्चे महाजनको समझ
या जान नहीं सकते, कारण उनकी बुद्धि सर्वदा
भ्रादि चार दोषोंसे दुष्टित होती है ।

अनादि कालसे रक्त माँस या शुक्रादि सप्तधातु-
विशिष्ट शरीरमें आत्मबुद्धि और आसक्तिवाले व्यक्ति
गद्गुलिका-प्रवाहकी भाँति ऐन्द्रिक ज्ञानके श्रोतमें बहे
जा रहे हैं । ऐसे प्राकृत-सहजिया-सम्प्रदायके कुछ
लोग श्रीमाधवेन्द्रपुरी पाद जैसे महाजनोंकी वाणियों
का अनादर करते हैं । इस प्रकार ‘महाजन’ चरणोंमें
अपराध संचय कर महाजनको ‘अनुदार’ अर्थात्
संकुचित वृत्तिवाले व्यक्ति कहते हैं और अपना अहित
स्वयं ही वरण करते हैं । बहुतसे लोग अपनी इन्द्रिय-
तर्पण मूला धारणाके अनुसार कल्पित महाजन सृष्टि
करते हैं तथा व्यभिचार, लम्फटता, लाभ, पूजा,
प्रतिष्ठा, कपटता, जीव हिंसा आदिके असंख्य अपराध
जनक काय्योंमें लिप्त होते जा रहे हैं ।

वास्तवमें जब तक यथार्थ महाजन कौन हैं ?—
यह ठीक-ठीक निर्णित न हो जाय, तब तक किसी
भी चेष्टा द्वारा कोई सुफल उत्पन्न नहीं हो सकता ।

आचैतन्य चरितामृतमें महाजनका स्वरूप निर्णय किया गया है—

परम कारण 'ईश्वरे' के ही नाहि माने ।
स्व-स्व मत स्थापे पर मतेर खण्डने ॥
ताते छय दर्शन हैते 'हत्य' नाहि जानि ।
'महाजन' जैइ कहे सेहुं 'सत्य' मानि ॥
श्री कृष्ण चैतन्य-वाणी अमृतेर धार ।
सिहो जे कहये 'बस्तु' सेहुं तत्त्व सार ॥
(मध्य २६-४४-४७)

अर्थात् सांख्य-पातंजलादि दर्शन वास्तवमें ईश्वर-को सब कारणोंके कारण नहीं मानते । सच वात तो यह है कि वे सभी 'प्रलभ्न' या 'अप्रलभ्न' नास्तिक हैं अर्थात् उनमेंसे कोई भी आस्तिक नहीं है, उन्होंने अपनी सारी शक्ति तर्क-युक्तिद्वारा स्वमत स्थापन और परमत स्वरण्डनमें ही लगा दी है । इसलिये इन दर्शन शास्त्रोंके उपदेशक जगतमें 'महाजन' कहलाने पर भी 'महाजन' नहीं हैं, बल्कि अत्यन्त संकुचित या अनुदार हैं । इस सत्य तथ्यको सुनकर तथा-कथित महाजनोंके भक्त झुँझला उठते हैं और अपने प्राकृत इन्द्रियज्ञानको ही सार समझ कर श्रीमन्महाप्रभु और शुद्ध भक्तोंके चरणोंमें अपराध संचय करते हैं । वे कहते हैं— यह बात ठीक नहीं है । श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु या श्रीमाधवेन्द्र पुरी भी पूर्वोक्त उपक्रियोंकी तरह ही एक महाजन मात्र हैं । अतएव यदि प्राकृत-सहज धर्मके चिन्ता-ओतमें निमग्न वे चिङ्गड़-समन्वयवादी इस प्रकारका सिद्धान्त करते हैं, तो इसमें सन्देह और आश्चर्य ही क्या है ? परन्तु जिनका अप्राकृत स्वरूप धर्म जाग्रत हुआ है, वे ही चैतन्य-धर्मके आलोकमें उद्घासित होकर प्रत्येक जीवका स्वरूप दर्शन करनेमें समर्थ हैं । महाभागवत परम-हस्तोंका दर्शन अधोक्षज-दर्शन या सुदर्शन होता है ।

अतएव ये निष्क्रियन महाभागवतही एकमात्र यथार्थ महाजन हैं । श्रील माधवेन्द्रपुरी गोस्वामी निष्क्रियन महाजन हैं । उनके आचरणमें किसी प्रकारकी मत्सरता या लोक-बंचना नहीं है, उन्होंने स्वयं जिस कृष्ण-भक्ति रूप परम धर्मका आचरण किया है उसीका प्रचार किया है । दैव-वर्णाश्रम धर्मको आदर्श मानकर उनका अनुसरण करनेसे मंगलकामी जीवोंका निश्चय ही मंगल होगा । श्रीमन्महाप्रभुने दैव वर्णाश्रम-धर्म पालनका स्वयं आदर्श दिखलाकर शिक्षा दी है ।

श्रीमद् भागवतमें (६।३।१६-२१) वारह महाजनोंके नाम लिखे हैं । कलियुगमें भगवत् भक्ति प्रचारक शुद्ध वैष्णव सम्प्रदायके चार आचार्य महाजन हैं । उनके अतिरिक्त हमारे सम्प्रदायके गौडीयेश्वर श्रीदामोदरस्वरूप मूल महाजन हैं । उनके अभिन्न कलेवर परमतत्त्व-श्रीगोरसुन्दरके प्रियतम श्रीरूप-सनातन, या श्रीरूपानुग साधुजन सभी महाजन हैं । चरणीदास, विद्यापति, जयदेव—ये सभी महाजन हैं । किन्तु जो इन महात्माओंमें भोग बुद्धि रखते हैं अर्थात् इनकी सेवा करनेके बदले इनको अपनी-अपनी तुच्छ स्वार्थसिद्धिका यंत्र बनाकर लोगोंको ठगते हैं खुदा के ऊपर भी खुदागिरी कहते हैं अर्थात् महाजनोंका भी महाजन बननेका दम भरते हैं, उन दुर्भागी व्यक्तियोंसे यथार्थ महाजन कोसों दूर रहते हैं । इन्द्रिय सुख भोग या मायाका दासत्व ही उनके पास कल्पित महाजनकी मूर्तिमें उपस्थित होता है और उनके साथ छलना कर उनकी इन्द्रियोंको प्रकृत सत्य पथसे हटा कर दूसरी ओर चला देता है । इसलिये शुद्ध भगवत् भक्तोंकी चेष्टा कभी भी उनकी प्राकृत-बुद्धिकी धारणाका विषय नहीं हो सकती ।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

हिन्दु-शब्द कैसे बना है ?

बहुत दिनों से 'हिन्दु'-शब्द कैसे बना है ? — इस प्रश्न को लेकर परिषद-मण्डली में तर्क-वितर्क चलता आ रहा है। इस विषय में विभिन्न लोगों की भिन्न-भिन्न धारणाएँ हैं। किसी का कहना है, 'हिन्दु' शब्द की उत्पत्ति 'हन्दु' शब्द से हुई है। किसी-किसी का कहना है, मुसलमान लोग हम को धूणा से हिन्दु कहते थे। कुछ लोग तन्त्रशास्त्र से एक श्लोक उद्धृत कर हिन्दु-शब्द की व्याख्या कहते हैं—'हीनान् धर्मान् परित्यज्य हिन्दुः परिकीर्तिः।' परन्तु फिर भी संदेह दूर नहीं होता। सम्प्रति हम निम्नलिखित चार श्लोकों में हिन्दु शब्द का अर्थ देखकर बड़े सन्तुष्ट हुए हैं—

उत्तरे भारतस्यास्य हिमाद्रि दिड्यदशंनः ।
दक्षिणे वर्तते विन्दुसरस्तीर्थो मनोहरः ॥
एतयोमध्यभागे यो वसति कुरुते नरः ।
आचन्तवर्ण-संयोगात् हिन्दुनामना महोयते ॥
शुद्धार्थकुलसंभूतः शुद्धाचारपरायणः ।
भारते वर्तते हिन्दुवर्णाश्रम विभागशः ॥
पूजनीयः सदा हिन्दुः सर्वेषां द्विपदामपि ।
शिरकः सर्वजातीनां महीतल-निवासिनाम् ॥

अर्थ—

—भारतवर्ष के उत्तरभाग में हिमाद्रि (हिमालय) नामक बड़ा ही रम्य पर्वत है तथा दक्षिण भाग में विन्दु सर नामक एक मनोहर तीर्थ है। जो व्यक्ति इन दोनों के बीच भाग में निवास करते हैं, वे हिमालय के प्रथम अक्षर 'हि' और विन्दु के अंतिम अक्षर 'न्दु', इन दोनों अक्षरों के संयोग से बने 'हिन्दु'

नामका माहात्म्य प्राप्त होते हैं, अर्थात् हिन्दु कहलाने है। गुदू आर्यकुल में पैदा हुए गुदू आचरण-स्मन्त्र हिन्दु वर्णाश्रम धर्म को अङ्गीकार कर भारतवर्ष में निवास करते हैं। हिन्दु—मनुष्यमात्र के पूजनीय हैं और संसार की समस्त जातियों के शिरक हैं।

हिमालय पर्वत से तो सभी परिचित हैं, परन्तु विन्दुसर कहाँ है—इसका निर्णय होना आवश्यक है। श्रीमद्भागवत तृतीय स्कन्ध इक्कीसवें अध्याय में कर्दम प्रजापति-संवाद में विन्दुसर की स्थिति पर प्रकाश ढाला गया है—

तदौ विन्दुसरो नाम सरस्वत्या परिष्कृतं ।

पुण्यं शिवामृतजलं महर्षिण्य सेवितम् ॥३१॥

इस श्लोक से ऐसा प्रतीत होता है कि सरस्वती नदी के निकट ही विन्दुसर की स्थिति है। हमारे विचार से यह विन्दुसर ही हिन्दुस्तान की दक्षिणी सीमा है। इस सीमा से आर्यवर्त और ब्रह्मावर्त दोनों खण्ड ही हिन्दुस्तान के भीतर पड़ते हैं।

शास्त्र में हिन्दु शब्द का उल्लेख न होने का कारण यह है कि बैरों की रचना आर्यों के हिन्दुस्तान में आने से पूर्व ही हो चुकी थी और जिस समय पुराण और धर्मशास्त्र लिखे गये, उस समय आर्यों के वंशधर आर्यवर्ती और ब्रह्मावर्ती को पार कर विभिन्न स्थानों में बास कर रहे थे। इसलिये उन उन स्थानों से लिखे गये पुराणों में पूर्व निर्णीत 'हिन्दु' नामका उल्लेख करना उन लोगों ने उचित नहीं समझा। अतः हिन्दु नामका केवल मौखिक भाषा में ही प्रयोग हुआ करता था।

—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

उपनिषद् का वाणी

इस उपनिषदमें नाम और नामीकी एकताका प्रतिपादन करनेके लिये प्रणवकी अ, उ, और म—इन तीन मात्राओंके साथ अव्यक्तरूप परमात्माके एक-एक पादकी समता दिखलायी गयी है। परमात्मा का ओंकार-नाम परमात्मासे अभिन्न है। ‘ओंम’—यह अचर ही अविनाशी पूर्ण ब्रह्म है। यह स्थूल और सूक्ष्म जगत्, जो परमात्मासे उत्पन्न होकर परमात्मामें ही लय हो चुका है और जो भविष्यमें उत्पन्न होगा—वह सबका सब ओंकार ही है। सम्पूर्ण जगत् परमात्माका अभिन्न रूप है। ओंकार उनका ही नाम होनेके कारण नामीसे सर्वथा अभिन्न है।

परमात्माके चार पाद हैं। वास्तवमें उन अखण्ड निरव्यव परम ब्रह्म परमात्माको चारपदों वाला कहना अनुचित है, तथापि उनके समप्ररूपकी व्याख्या करनेके लिये उनकी अभिव्यक्तिके प्रकार भेदोंका अतिमें जगह-जगह वर्णन किया गया है। परमात्माके चार पाद कौन-कौन हैं? इसके उत्तरमें बतला रहे हैं—जीवात्माके स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीनों शरीरोंके उदाहरण देते हुए तीन पादोंका वर्णन किया गया है। जिस प्रकार जाग्रत् अवस्थामें स्थूल शरीरमें आत्मबुद्धि रखनेवाला जीवात्मा सिरसे लेकर पैर तक सात अङ्गोंसे युक्त होकर स्थूल विषयोंके उपभोगके द्वाररूप इस इन्द्रिय, पाँच प्राण और चार अन्तःकरण—इन उन्नीस मुखोंसे विषयोंको भोगता है और वाणु जगतमें उसका विज्ञान प्रतिफलित होता है, उसी प्रकार सात लोकाकार सात अङ्गों और समष्टि इन्द्रिय, प्राण तथा अन्तःकरण—इस प्रकार उन्नीस मुखोंसे युक्त इस स्थूल जगतरूप शरीरका आत्मा—जो सम्पूर्ण देवता, पितर, मनुष्य आदि समस्त प्राणियोंका प्रेरक और स्वामी होनेके कारण इस जगत्का ज्ञाता और भोक्ता है, जिसकी अभिव्यक्ति

इस वाणु स्थूल जगतमें हो रही है—वह सर्वरूप वैश्वानर उन पूर्णब्रह्म परमात्माका प्रथम पाद है।

विश्वको धारण करते हैं, इसलिये उनका नाम वैश्वानर है। ब्रह्मसूत्रके पहले अध्याय द्वितीयपाद, २४वें सूत्रमें स्पष्ट कर दिया गया है कि आत्मा और ब्रह्म इन दोनोंका वाचक ‘वैश्वानर’ शब्द जीवात्मा अथवा अग्निका नाम नहीं है। वह परब्रह्मका ही वाचक है। छान्दोग्य उपनिषदमें भी वैश्वानर-विद्याके प्रसंगमें परमात्माको ही वैश्वानर कहा गया है। परमात्मा ही समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति और प्रलयके स्थान है। वे सर्वज्ञ, अन्तर्यामी और समस्त जगत के कारण हैं। ये लक्षण-समूह जीवात्मामें नहीं घटते। अतएव वैश्वानरको परमात्माका ही एक पाद मानना युक्ति-संगत मालूम होता है।

स्वप्र-स्थान (स्वप्रावस्थाके समान सूक्ष्म जगतमें जिसका स्थान है) परमात्माका दूसरापाद है। जिस प्रकार स्वप्र-अवस्थामें सूक्ष्म शरीरका अभिमानी जीवात्मा उपर्युक्त उन्नीस मुखोंसे सूक्ष्म विषयोंको भोगता है और उसीमें उसका ज्ञान फैला रहता है, उसी प्रकार सात लोक आदि उन्नीस मुखोंवाले सूक्ष्म जगत्-हप्ती शरीरमें स्थित हिरण्यगर्भ जड़ और चेतनात्मक सूक्ष्म जगत्के समस्त तत्त्वोंके नियन्ता, ज्ञाता एवं समस्त वस्तुओंको अपनेमें प्रविष्ट किये हुए होनेके कारण उसे उनका भोक्ता और ज्ञाता कहा गया है। इसलिये यह तैजस अर्थात् सूक्ष्म प्रकाश मय हिरण्यगर्भ ही उन परमात्माके द्वितीय पाद हैं।

समस्त ज्योतिश्चयोंकी ज्योति, सबके प्रकाशक, परम प्रकाशमय हिरण्यगर्भ रूप परमेश्वरको ‘तैजस’ नामसे वर्णन किया गया है। ब्रह्मसूत्रके ‘ज्योति-श्चरणाभिधाननाम्’ (१।१।२४) सूत्र से यह स्पष्ट

होता है कि ज्योति: या तेजः शब्द ब्रह्मका ही वाचक है। उपनिषदमें भी अनेक जगह ऐसा कहा गया है। स्वप्नावस्थामें जीवात्माका ज्ञान जापत अवस्था की अपेक्षा कम होता है, परन्तु द्विरण्यगम्भका ज्ञान जापत की अपेक्षा अधिक होता है। इसलिये इसीको तैजस अर्थात् ज्ञानस्वरूप मानाना युक्ति संगत प्रतीत होता है।

जिस प्रकार सुप्र अवस्थामें मनुष्य किसी प्रकार भोगोकी कामना या अनुभव नहीं कर सकता, किसी प्रकारका स्वप्न भी नहीं देखता, उसी प्रकार प्रलयावस्थामें जगतके कारणावस्थामें ज्ञानप्रकारके रूपोंका प्रकाश नहीं होता। जिनकी एक रूपमें मिथ्यति है, उपनिषदोंमें सत् आत्माके नामसे जिनका जगह-जगह पर वर्णन किया गया है, चेतनता ही जिनका मुख है, आनन्द ही जिनका भोजन है, वे विज्ञान-घन आनन्दमय 'प्राज्ञ' पूर्णब्रह्मके तीसरे पाद हैं।

यह 'प्राज्ञ' नाम भी सृष्टिके कारण सर्वज्ञ परमेश्वरका नाम है। ब्रह्मसूत्रके १।४।५ सूत्रमें प्राज्ञ-शब्दका प्रयोग ईश्वरके लिये हुआ है। सर्वज्ञतारूप प्रज्ञासे नित्य संयुक्त होनेके कारण परमेश्वरका नाम प्राज्ञ है। पुनः उनका विशेषण प्रज्ञानघन और आनन्दमय आकार जीवका वाचक नहीं हो सकता है। इसलिये 'प्राज्ञ' पदका वाच्यार्थ परमेश्वरको ही समझना चाहिए, जीवको नहीं।

ब्रह्मको वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञ कहे जानेका कारण यह है कि जिन परमेश्वरके तीन पादोंका वर्णन किया गया है, वे समस्त ईश्वरोंके ईश्वर, सर्वज्ञ और सबके अन्तर्यामी हैं; वे सम्पूर्ण जगतके कारण हैं उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके आभास-स्वरूप हैं।

अब ब्रह्मके चौथे पादका वर्णन किया जा रहा है। जिसका ज्ञान न तो बाहरकी ओर है, न भीतर की ओर है और न दोनों ओर ही है; जो न ज्ञान-स्वरूप है, न ज्ञानस्वरूप है और न अज्ञानस्वरूप ही है; जिनको न तो देखा जा सकता है, न व्यवहारमें लाया जा सकता है और न प्रहण किया जा सकता है, जिनका न तो चिन्तन किया जा सकता है, न

वर्णन किया जा सकता है और न जिनका कोई लक्षण देना जा सकता है; जिनमें सम्पूर्ण प्रपञ्चका अभाव है, एकमात्र परमात्मसत्ता ही जिसका सार है—ऐसा सर्वथा शान्त, क्लशणमय एवं अद्वितीय तत्त्व ही ब्रह्मका चतुर्थ पाद है।

इस परमब्रह्मके चार पादोंकी कलना केवलमात्र उनका। तत्त्व समझनेके लिये ही की गयी है। वास्तवमें जड़ अवयवरहित अवयव परमात्माके कोई भाग नहीं है। वे स्थूल जगतमें भी पूर्ण हैं, सूदम या वारण जगतमें भी अन्तर्यामी और अविद्याता हैं, तथा पुनः वे निर्विशेष भी हैं, सविशेष भी हैं। सविशेष, साकार, निर्गुण, निराकार, सगुण-ये सभी शब्द उनके ही वाचक हैं। वास्तवमें वे हमारी बुद्धि और तर्कसं अतीत हैं।

वे परमब्रह्म परमात्मा अपने नामसे अभिन्न होने के कारण तीन मात्राओंवाला ओंकार हैं। अ, उ, म,—ये तीनों मात्राएँ ही उनके तीन पाद हैं। यहाँ पाद और मात्राको एकता ओंकारके द्वारा परमब्रह्म परमात्मा की उपासनाके लिये की गयी है।

परमब्रह्म परमात्माके नामात्मक ओंकारकी पहली मात्रा 'अ' है। यह समस्त जगतके नामोंमें अर्थात् किसी भी अर्थको बतलानेवाले गिनते भी शब्द हैं, उन सबमें व्याप्र है। स्वर और वर्णजन—कोई भी वर्ण अकारसे रहित नहीं है। ऐतरेय श्रुति भी कहती है—'अकारो वै सर्वावाक्।' गीतामें भी भगवानने कहा है—'अक्षराणाम 'अ'—'कारोऽस्मि।' तथा समस्त वर्णोंमें 'अ' ही पहला वर्ण है। इसी प्रकार स्थूल जगतमें वे 'वैश्वानर' अन्तर्यामीके रूपमें सर्वत्र व्याप्र हैं और सबके पहले विद्यमान रहनेके कारण वे सर्वादि भी हैं। इस प्रकार 'अ' एवं वैश्वानर अन्तर्यामीकी एकता प्रतिपादित होती है। जो इस तत्त्वको जान लेते हैं, वे सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्तकर लेते हैं और जगतमें सर्वमान्य हो जाते हैं। अब दूसरे पादकी ओर दूसरी मात्राकी एकताका प्रतिपादन करते हैं। ओंकारकी द्वितीय मात्रा 'उ' है। यह 'अ' से उक्तुष्ट (ऊपर उठा हुआ)

होनेके कारण श्रेष्ठ है तथा अ और म—इन दोनों के वीचमें स्थित होनेके कारण उन दोनोंके साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है; अतः उभय-स्वरूप है। इसी प्रकार वैश्वानरसे तैजस भी उत्पन्न है। तथा वैश्वानर एवं प्राङ्गके वीच स्थित रहनेके कारण दोनोंसे सम्बन्धयुक्त है। इस स्थूल जगत्के प्रकट होनेसे पहले परमेश्वरके आदि संकल्पसे जो सूक्ष्म रूपमें सृष्टि होती है, उस सूक्ष्म जगत्स्वरूप शरीरमें केवल प्रकाशरूपमें हिरण्यगर्भके अधिष्ठातृरूपमें परमेश्वर विराजमान रहते हैं। अतएव 'उ' और तैजस रूपकी समानता होनेके कारण 'उ' ही परमब्रह्म का दूसरा पाद है। जो इस तत्त्वको जान लेता है, वह सूक्ष्म जगत्का दर्शन करनेमें समर्थ होता है और सब जगह समताको प्राप्त हो जाता है।

परब्रह्मके नामात्मक ओंकारकी तीसरी मात्रा 'म' है। यह 'मा'—धातुसे उत्पन्न हुई है। 'मा' धातु का अर्थ माप लेना अर्थात् अमुक वस्तु इतनी है, यह जान लेना है। यह 'म' ओंकारकी अन्तिम मात्रा है; 'अ' और 'उ' के पीछे उच्चरित होनेके कारण इन दोनोंका माप (नाप) इसमें पाया जाता है।

'म' का उच्चारण होते-होते मुख बन्द हो जाता है और अ तथा उ दोनों उसमें विलीन हो जाते हैं। अतः वह उन दोनों मात्राओंको अन्तमें विलीन करनेवाला भी है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण, इन तीनों जगतोंके ज्ञाता प्राङ्ग तृतीय स्थानीय परमात्मामें स्थूल-सूक्ष्म सब कुल विलीन हो जाता है; अतः ओंकारका तीसरा पाद 'म' और प्राङ्गकी एकता प्रतिपादित है। जो इस एकताके रहस्यको जानकर परमेश्वरका चिन्तन करता है, वह सम्पूर्ण जगत्का तत्त्व भली प्रकार जान लेता है। उसकी वाहरी हृषि निवृत्त हो जाती है। अतः वह सर्वत्र एक अद्वितीय वस्तुके दर्शनका अधिकारी बन जाता है।

परब्रह्मका वाचक ओंकारका जो मात्रारहित, अव्यक्त और निराकार स्वरूप है, वही मन-वाणीसे अगोचर होनेसे व्यवहारमें न लाया जा सकनेवाला, प्रपञ्चसे अतीत, कल्याणमय, अद्वितीय निर्गुणरूप चौथा पाद है। जो मनुष्य इस परब्रह्मके नाम-नामी-की एकताका रहस्य जान लेते हैं, वे निस्सन्देह ही परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं।

—त्रिदिविंश्ट स्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रीती महाराज

सनातन-धर्म

[श्री श्रीकृष्ण आचार्यदेवके भाषणके अवलम्बन पर लिखित]

जीवके नित्य धर्मको सनातन धर्म कहते हैं। 'सदा+तन इति सनातनः; 'तन'--का शब्दार्थ विस्तार' होता है। जो धर्म सदा-सर्वदा अर्थात् नित्य काल वर्तमान है, वही सनातन धर्म या वैष्णव धर्म है। भगवान् नित्य वस्तु हैं। जीव भी नित्य है, उसका धर्म भी नित्य अर्थात् सनातन होता है। इन तीन तत्त्वोंका नित्यत्व जिसमें स्वीकृत है, उसे सनातन धर्म कहते हैं।

सनातन धर्मके ऊपर बौद्ध, जैन, इस्लाम, माया-

वाद और ईसाई आदि अधर्मोंके नानाप्रकारके अत्याचार और उपद्रव हुए हैं। वेद, वेदान्त, भारत, उपनिषद् और श्रीमद्भागवत पुराणादि सनातन धर्मके प्राण-स्वरूप हैं। नास्तिक्यवाद पोषणकारी व्यक्तियोंने इन शास्त्रोंको अस्वीकार करके अनेकों प्रकारके अधर्मोंकी सृष्टि की हैं और जनसाधारणको ईश्वर विश्वासहीन करके पशु-धर्म (आहार, निद्रा, भय, मौथुन) की ओर चालित करनेसे बाज़ नहीं आए हैं। प्राङ्गभौतिक शरीरकी दुःख-निवृति होने पर मनुष्य

कैसे निर्वाण लाभ कर सकता है, सुख-दुःख बोध-राहित्य अवस्था किस प्रकार लाभ कर सकता है?—मायावादियोंने इसकी चेष्टा की है, परन्तु इस प्रयासमें वे वात्तविक रूपमें सफल नहीं हो सके हैं। इसका कारण यह है कि जीव जब तक भगवन् पादपद्मा लाभ न कर ले, तब तक वह त्रितापज्वालासे उद्धार नहीं पा सकता। औद्धों और जैनियोंके ईश्वर-विश्वास-रहित केवल मात्र अहिंसा चृति या दूसरे साधनों द्वारा कृष्ण पादपद्माको प्राप्त नहीं किया जा सकता। केवल मात्र भगवानकी सेवाके निमित्त सनातन धर्म या वैष्णव धर्म प्रहण कर श्रीकृष्णकी सेवामें मनको लगा लेनेसे ही संसारके सब प्रकारके अनित्य मुख्यों और नानाप्रकारके दुःखोंसे छुटकारा पाया जा सकता है। गीतामें कहते हैं—‘यान्ति॒मद्या॑जिनोऽपि॒माम्’ अर्थात् मेरे भक्त ही मुझे प्राप्त होते हैं।

कर्म, ज्ञान, योगादिमें उपास्य, उपासना और उपासकका नित्यत्व स्वीकार नहीं किया गया है। उनका कहना है—‘जीव अपने कर्मानुसार सुख-दुःख भोग करता है और अच्छे-बुरे कर्मोंके फल-स्वरूप सुख-दुःख भोगनेके लिये जन्म प्रहण करता है। यदि वह किसी प्रकार निर्वाण लाभ कर सके, तो उसे पुनर्जन्मके प्रवाहमें नहीं आना पड़ेगा। जन्म ही जब नहीं होगा, फिर उन्हें जागतिक दुःख-मुख्योंसे छुटकारा पानेके लिए साधनकी भी आवश्यकता नहीं रहेगी।’ फिर भी उस समयके भारत-सम्राट अशोक तथा कञ्चोजके अधिपति हर्षवर्धन एवं दूसरे नृपतियोंने भारत व भारतके बाहर औद्ध धर्मका प्रचार किया था। मध्ययुगमें देखा गया—इस्लाम धर्मावलम्बियोंने इस्लाम धर्म प्रचारके लिये तलबार पकड़ी और उसके बहु पर सनातनियोंको बलपूर्वक मुसलमान बनाया। इसके अतिरिक्त उस समयके इस्लामी राजाओंने सनातन धर्म माननेवाले अनेक लोगोंको राज्यकी ओरसे नाना प्रकारकी सुख सुविधाका लोभ दिखा कर भी धर्मान्तरित कर लिया। फिर अंप्रेज भारतके राजा हुए; उन्होंने भी राज्यकी ओरसे अनेक प्रकारकी सुयोग-सुविधाओंका प्रलोभन दिखाकर

बहुतसे कोमल हृदयके लोगोंको अपने धर्ममें लाया। ये सब धर्म भौतिक धर्म हैं। भौतिक धर्म सभी ध्वंशशील हैं। वे जीवके नित्य धर्म नहीं हैं। सनातन धर्मको उत्पत्ति नहीं है, इसलिये यह आज व नित्य धर्म है। इस धर्मका जन्म-काल कोई निरूपण (निश्चय) नहीं कर सका है, यह अनादि है। इस कारण इसका विनाश नहीं है।

आचार्य श्री शंकरने जिस अद्वैतवादका प्रचार किया है, वह मायावाद नामसे परिचित है। उन्होंने वेदको नाममात्रके लिये स्वीकार किया है, क्योंकि वेदके एक-दशीय विचारको ही प्रहण किया है। इसलिये कहा जा सकता है कि उन्होंने वेदके पूर्ण विचारको प्रहण नहीं किया है। जिस ब्रह्मवादका वे प्रचार किये हैं, उसमें ब्रह्मको निराकार, निर्विकार, निःशक्तिक, निर्गुण, निर्विशेष माना गया है और उसे नेति-नेति रूपमें वर्णन किया गया है। इस ब्रह्मवादको सनातन धर्मके अनुकूल नहीं मानते, क्योंकि ब्रह्मके निराकारत्व, निर्गुणत्व इत्यादि नेति-नेतिवाद को शुद्ध वेदान्तिक सनातन धर्मका अंग स्वीकार नहीं करते हैं। आचार्य श्रीशंकरने वेदके स्वाभाविक अर्थको छोड़कर विपरीत अर्थका प्रचार किया है और वहाँको आपने कपोलकल्पित पथ पर लाया है। सनातन धर्म ईश्वरके रूप, गुण व लीलाको स्वीकार करता है। भगवानके प्रति सेवाधर्म ही सनातन धर्म या वैष्णव धर्म है। जो भगवानके रूप, गुण, लीलाको स्वीकार नहीं करते और भगवान को निराकार, निर्विकार, निःशक्तिक और निर्गुण प्रचार करते हैं, उन्हें सनातन धर्मावलम्बी सद्वे हिन्दुधर्मी नहीं मानते। मुसलमान और ईसाई-विप्रह-विरोधी हैं। वे हमारे लिये असृत्य हैं। श्रीमन्महाप्रभु कहते हैं—

काशीत पदाय वेटा प्रकाशानन्द।

सेहू वेटा करे मोर अंग खण्ड खण्ड ॥ (चै. च.)

काशीमें एकदंडी संन्यासियोंके गुरु प्रकाशानन्द थे। वे अद्वैत मतके अनुसार वेदान्त पढ़ाते थे। श्रीमन्महाप्रभु कहते हैं—वह वेटा हमारे अन्न

को खरण्ड-खरण्ड करता है। कहनेका अर्थ यह है—मायावाद विचारधाराको ग्रहण करनेवाले जितने भी धर्म प्रचलित हैं, सभी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें सनातनधर्मके घातक हैं।

उपरोक्त वेद-विरोधी, शास्त्र-विरोधी धर्मोंके प्रबल अत्याचारके बावजूद आज भी सनातन धर्म अपने स्थान पर अपनी अज्ञुणु अवस्थामें उसी गौरव के साथ वर्तमान है और आगे भी वर्तमान रहेगा।

भगवान निराकर है—यह चिन्ता-ओत अनेको अपधर्मोंके अन्दर प्रवेश कर गया है। किन्तु उनके धर्म प्रन्थोंमें भगवानके साकार होनेका सुस्पष्ट उल्लेख देखा जाता है। मुसलमानोंके धर्म-प्रन्थ कुरानमें एक आयतमें ऐसा लिखा है—“इन्हा लाहा खलाका मेन् सुरात हि।” खुदातालाने अपने रूपके समान मनुष्यकी सृष्टि की है। ईसाईयोंके धर्म प्रन्थ Bible में लिखा है—“God created men out of his own image.” अतएव देखा जाता है कि, प्रत्येक धर्ममें भगवानकी नराकृतिको माना है। वैष्णवगण भगवानके नररूपको स्वयंरूप परतत्व स्वीकार करते हैं।

भगवानके रूप, गुण, लीलाको अस्वीकार करने का अर्थ ही है—भगवानको अस्वीकार करना। जिस धर्ममें भगवानके रूप, गुण, लीलाको नहीं माना गया है, उसे सनातन धर्म या भागवत धर्म नहीं कह सकते।

आचार्य शंकरके मायावाद मतमें मुक्तिके सम्बन्धमें जो कुछ कहा है, वह वास्तवमें मुक्ति नहीं है। कारण वैसी मुक्ति एक प्रकारसे जड़त्वकी प्राप्ति है। उसका कहना है—जीव ही जड़ है। अविद्याके कारण मायाप्रस्त होनेसे जीवकी पृथक प्रतीति होती है। जीव फिर से जब ज्ञान साधन करके सिद्धिको प्राप्त कर लेगा, तब जीव सत्ता ध्वंस होकर ब्रह्ममें लीन हो जायेगी। यह अवस्था एक प्रकारसे आत्म-हत्या है। जीवकी पृथक कोई स्थिति नहीं है—मुक्तिकी ऐसी अवस्था यदि स्वीकार कर ली जाये, तो जीवकी कोई सार्थकता ही नहीं रह

जाती। कारण देखा जाता है, चीनी सभी आस्वादन करना चाहते हैं, चीनी हो जाना कोई नहीं चाहता। चीनीके खानेमें ही आनन्द है, चीनी हो जानेमें कोई आनन्द नहीं है। वास्तवमें भगवानकी सेवा करनेमें ही आनन्द है। निर्विशेष ब्रह्ममें अपनी सत्ता लोप हो जाने पर पथरके समान हो जाना पड़ता है, कोई सेवानन्द लाभ नहीं होता, केवल मात्र जीवकी आत्महत्या हो जाती है। निर्विशेषत्व प्राप्त होने पर जीवको अनुभव-शक्ति लोप हो जाती है। अतः शून्य जड़ जैसी उसकी स्थिति हो गई, चेतन-धर्म लुप्त हो गया। जगतमें देखा जाता है, यदि कोई आत्म-हत्याकी चेष्टा करता है, पुलिस अगर किसी प्रकार खबर पा लेती है, तो वह उसे कारागारमें दे देती है। कारण वह आत्म विरोधी, समाज द्वाही, पापी है। इसी प्रकार जो भगवानकी सेवा छोड़ कर भगवानमें अपनी सत्ताको लोप कर अनुभव-रहित पथरके समान हो जाना चाहते हैं, वे धर्म जगतमें अपराधी होनेके कारण जन्म-जन्मान्तरों तक भीपण नरक-यंत्रण भोग करते हैं। इससे प्रमाणित होता है, मायावादी ईश्वरके अपराधी हैं। आचार्य शंकर वास्तवमें सनातन धर्मके प्रचारक थे—ऐसा नहीं कहा जा सकता। उन्होंने मुख्यसे वेदको स्वीकार किया तो है, परन्तु वास्तवमें वे वेद-विरोधी प्रचलन बौद्ध हैं। किन्तु आपात हृषिमें ऐसा प्रतीत होता है कि वे वेद विरोधी-बौद्ध धर्मको दूर करनेके लिए आविभूत हुए थे।

मायावादियोंकी तरह दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रवर्चित आर्य समाज भी नाम मात्रको वेद स्वीकार करता है और नाम प्रकारके अशास्त्रीय-वेद-विरोधी कार्यमें लिप्त है। इनकी प्रचार धारा ठांक आचार्य शंकर जैसी प्रतीत होती है, परन्तु वास्तवमें इनमें पर्याप्त रूपमें भेद है। इन अलग-अलग अपधर्मों कुछमोंकी उत्पत्ति होने पर भी सनातन वैष्णव धर्म अब भी अपनी विजय पताकाको बड़े शानसे उन्नत किये हुए है।

श्रीश्रीराधाकृष्णकी युगल उपासना ही सनातन

धर्म या वैद्युत धर्म है। इस धर्मके उपास्य, उपासना, उपासक नित्य वस्तु हैं। श्रीश्री राधाकृष्णके रूप, गुण, लीलादिका वर्णन और उनके प्रति सेवा-प्रीति करनी ही सनातन धर्म या वैद्युत धर्मका मूल प्रतिपाद्य वस्तु है। जिस धर्ममें वस्तु (भगवान) के सेवा-धर्मका नित्यत्व स्वीकार नहीं किया गया है, वह कुधर्म है। वेद, वेदान्त, उपनिषद्, महाभारत और इतिहास पुराणादिका प्रतिपाद्य तत्त्वही सनातन धर्म का प्रतिपाद्य तत्त्व है। केवल मात्र सनातन धर्म ही हम लोगोंके लिये प्रहणीय और पालनीय है। जो धर्म जिस मात्रामें सनातन धर्मके अनुगत है, वह धर्म उसी मात्रामें हमारे प्रहण करने योग्य हो सकता है—यही महाजनों (गुरुजनों) का उपदेश है। स्वयं अवतारी पुरुष श्रीचैतन्यमहाप्रभुने श्रीधाम मायापुरमें आविभूत होकर जिस प्रेम-धर्म का प्रचार किया है, उसमें सनातन धर्मका प्रतिपाद्य तत्त्व पूर्ण रूपेण निहित है। श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रचारित विमल प्रेम धर्मही सनातन धर्म है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं—

“आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्वाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना ब्रजवधुर्वर्णेण या किषिता ।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः ॥

अर्थात्—स्वयं भगवान् नन्दनन्दन श्रीकृष्ण एवं उनका लीला-स्थल वृन्दावन ही हमारे आराध्य हैं, ब्रजकी गोपियोंने जिस प्रकारसे श्रीश्रीराधाकृष्णकी उपासना की थी, वही हमारे लिये अभियेय और प्रहणीय है। अमल पुराण श्रीमद्भागवत ही एकमात्र प्रमाण है। यही श्रीचैतन्य महाप्रसुका मत है और यही केवल आदरणीय है।

श्रीचैतन्यमहाप्रभुके विमल प्रेमकी प्रबल बाढ़में लाखों करोड़ों निमन हो गये थे। किन्तु धीरे-धीरे लोग अपने इस पूर्व गौरवको भूलकर पाश्चात्य शिक्षासे प्रभावित होकर विदेशी विचार धारामें बहते जा रहे हैं तथा नाना प्रकारके कुसंगोमें पड़कर

भीषण ईश्वर-विरोधी मतवादकी ओर प्रवल बेगसे धावित हो रहे हैं। किन्तु भारतवर्ष धर्म-भूमि है। किसे ईश्वर-विश्वासी ईश्वरोन्मुखता प्राप्त कर भगवानकी सेवामें नियुक्त होनेसे परम मंगलकी प्राप्ति हो सकती है। धर्म-विश्वास परित्याग करनेसे भारतवर्षका ध्वंस होना अनिवार्य है।

अप्रेजी व्याकरणमें हम साधारण भूल या Common Errors देखते हैं। जिस प्रकार हम लोगोंके देशमें आकाश-कुसुम एक शब्द है। लेकिन वास्तवमें आकाश कुसुम कहनेका कोई अर्थ ही नहीं होता है। अथव भाषामें इसका प्रचलन है। धर्म जगतमें इसी प्रकार कुछ Common Errors हैं। इस प्रकार बहुतसे कर्म हैं जो धर्म जैसे प्रतीत तो होते हैं, पर वास्तवमें धर्म नहीं हैं। जैसे दान करना, वृक्षादि लगाना, तालाब खोदना, दुखियोंकी सेवा इत्यादिको लोग धर्म कहते हैं, लेकिन शास्त्र कहते हैं—इन सब कर्मोंको करनेसे पुण्य अवश्य होता है; भगवन् सेवाकी प्राप्ति या मोक्ष नहीं होता। जैसे श्रीमद्गीतामें कहते हैं—

ते तं भुक्त्वा स्वर्गं लोकं विशालं

चीर्णे पुण्ये मर्त्यं लोकं विशन्ति ।

अर्थात् मनुष्य बेदोक्त पुण्यादि कर्मोंके फलोंसे विशाल स्वर्ग सुख लाभ करता है, परन्तु धीरे-धीरे पुण्य क्षय होने पर पुनः मृत्यु लोकमें प्रवेश करता है, जन्म-मृत्युसे छुटकारा नहीं पाता है। इसी त्रिताप व्याला यंत्रणाको भोग करते रहते हैं। इसलिये देखा जाता है—दान-पुण्यादि कर्मों द्वारा मनुष्योंको चिर शान्ति या परा शान्तिकी प्राप्ति नहीं होती है—यद्यपि संसारमें इन कर्मोंकी आवश्यकता अनेक स्थलोंमें प्रतीत होती है। शास्त्र कहते हैं—परम पुरुषका भजन करनेसे ही पराशन्ति लाभ होती है। गीताका वचन है—

सर्वं धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।

धर्म-अधर्म सब कुछ छोड़ कर श्रीकृष्णकी शरण प्रहण कर लेनेसे सर्व प्रकारसे सनातन धर्म का

पालन करना हो जायगा और अन्तमें पराशान्ति भी लाभ हो जायगी। किस धर्मको हमें प्रहण करना चाहिये—इस सम्बन्धमें सर्वशास्त्र चूडामणि श्री-मद्भगवतका कथन है—

मैं पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहंतुक्यप्रतिहता यथात्मा सुप्रसीदति ॥
धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।
नोत्पादद्येद् यदि रति अम पूर्व हि केवलम् ॥

इस श्लोकको बहुला भाषामें श्रीगुरु पादपद्म लिखते हैं—

“सेव्ये धर्मं श्रेष्ठं याते आत्मं परसञ्च ।
अधोक्षजे अहंतुकी भक्ति विद्म शून्य ॥
अन्य धर्मं सुष्ठु रूपे पाले जेहं जन ।
हरि कथाय रति नैले दंड सेहं अम ॥”

जिस धर्मके पालनेसे अधोक्षज हरि अर्थात् अतीन्द्रिय वस्तु श्रीभगवानके प्रति आनन्द भक्ति लाभ होती है, वह कैतवशून्य (कपटताशून्य) वास्तव धर्म ही सनातन धर्म या भागवत धर्म है। उसी धर्मका पालन करना कर्तव्य है। इस धर्मका पालन करनेसे ही हम भगवानको लाभ कर सकते हैं। किन्तु सांसारिक धर्मोंके द्वारा कृष्ण भक्ति लाभ नहीं होती है और परा शान्तिकी भी प्राप्ति नहीं होती; संसारमें जितने प्रकारके धर्म हैं, उनका यदि ठीक-ठीक पालन किया भी जाय तो वह—रेतीको पीस कर तेल बाहर करने जैसा व्यर्थ परिश्रम ही हो जाता है। श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु प्रन्थमें श्रीलहुप गोस्वामी लिखते हैं—

अन्याभिलाषिता-शून्यं ज्ञान-कर्माद्यनाशुतं ।
आनुहृत्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुचमा ॥

अभेद ब्रह्मानुसन्धानरूप ज्ञान और स्मार्त क्रियाकर्मादिको छोड़कर एकमात्र भक्तिके अनुकूल क्रियाओंको प्रहण कर कृष्णानुशीलन द्वारा ही भक्ति लाभ होती है। केवल भक्ति द्वारा ही भगवानको पाया जा है। श्रुति प्रमाण—

भक्तिरेवैन् नयति भक्तिरेवैन् दर्शयति ।

भक्तिवशः पुरुषो भक्तिरेव भूयसीति ॥

अर्थात्—भक्ति ही भक्तिको भगवानके धाममें ले जाकर भगवानका दर्शन कराती है और भक्ति द्वारा ही भगवत-प्रीति लाभ होती है। साधारणतः यह कहा जा सकता है कि भगवानकी प्रीतिके लिये जो भी किया जाये, उसे भक्ति कहते हैं। इस भगवत सेवामय सनातन धर्म या वैष्णव धर्मका पालन करनेसे परमानन्द लाभ होता है।

कुछ लोग ऐसा भी कह सकते हैं, कि भगवत सेवामें भी कुछ आनन्द है या नहीं, हम कुछ नहीं जानते। इसका उत्तर यह है कि भगवानकी सेवा करनेसे जिस अप्राकृत आनन्दकी उपलब्धि होती है, वह आनन्द कैसा होता है, उसे वही जानते हैं, जो भगवानकी सेवा करते हैं; उसे स्वयं उपलब्धि द्वारा ही जाना जा सकता है, भाषा द्वारा दूसरोंको समझाया नहीं जा सकता। जैसे बालककी सेवा-श्रूपामें माताको क्या आनन्द मिलता है—माता ही जानती है; जिस स्त्रीको सन्तान नहीं है, वह उस सुखको भला कैसे अनुभव कर सकती है? अतएव पहले विष्वास और धैर्यके साथ भगवानकी सेवा करनी उचित है, धीरे-धीरे सेवा करते-करते भगवत-सेवामें क्या अनुलनीय आनन्द छिपा है, उपलब्धि हो जाती है—शास्त्र यही बतलाते हैं।

अस्तु, धर्म पालनेसे क्या होगा? ऐसा कुतर्क करनेसे कोई लाभ नहीं; स्वयं आचरण करके देखना उचित है, तभी सनातन, वैष्णव धर्म भला है या बुरा, इसका निर्णय हो सकेगा। मैं ‘जलमें पैर नहीं दूँगा, मुझे तैरना सिखा दो’ ऐसे कथनाका जैसे कोई अर्थ नहीं है, ठीक यही मूल्य है इन सब कुतर्कोंका। हम स्वयं भगवान श्रीकृष्णके नित्यदास हैं, इसलिये उनकी सेवा करना ही हमारा नित्य धर्म या सनातन धर्म है। इस धर्ममें ही उपास्य, उपासना और उपासकका नित्यत्व सब प्रकार स्थीकृत है। सनातन धर्मको छोड़कर दूसरे-दूसरे धर्मोंने उपास्य, उपासना

और उपासकका नित्यत्व स्वीकार नहीं किया है। इसीलिये सनातन धर्म छोड़कर और कोई भी धर्म जीवका नित्य धर्म नहीं कहा जा सकता है।

मृथिवी ते यत कथा धर्म नामे चले ।
भागवत कहे ताहा परिपूर्ण लजे ॥

(चै. च.)

और यही श्रीमद्भागवत कहते हैं—सब प्रकार-के कैतवसे शून्य (कपटतासे रहित) भागवत धर्म या सनातन धर्म ही धर्म है और जितने भी धर्म, धर्मके नामसे जगतमें प्रचलित हैं वे सब नैमित्तिक धर्म, छल धर्म, कपट धर्म हैं। इनसे जीवका नित्य कल्याण कदापि नहीं हो सकता।

(श्रीगौड़ीय पत्रिकासे अनुदित)

श्रीचैतन्यदेव और हरिनाम

श्रीहरिनाम सब युगोंके लिये श्रेष्ठ साधन विवेचित होने पर भी दूसरे-दूसरे युगोंमें ध्यान, यज्ञ एवं अर्चन-विधियोंका अधिक प्रचलन था। जिस मृतसंजीवनी औपचके विषयमें अनिभिज्ञ चिकित्सक रोग दूर करनेके लिए त्रिकुट, निम्बादि नानाप्रकारकी क्लेशकर और कष्ट-साध्य औपचियोंकी व्यवस्था करते हैं, उसी प्रकार सत्य, ब्रेता और द्वापर युगमें ध्यान, यज्ञ और अर्चनादिकी व्यवस्था समझनी चाहिए। जिस प्रकार सुचतुर और मृत-संजीवनी औपचिके विषयमें अनुभवी चिकित्सक केवल सर्वश्रेष्ठ औपचिमृत-संजीवनीकी व्यवस्था देकर रोगीको बिना दुःख व क्लेशके ही निरोग कर देता है, ठीक उसी प्रकार सत्य, ब्रेता और द्वापर युगोंमें अजामिल, रत्नाकर आदि एकमात्र हरिनामका ही आश्रय कर सबसे अधिक पांपोंसे सहज ही मुक्त हो गए और वडे सुख-से श्रीहरिके चरण कमलोंको प्राप्त कर लिये—ऐसा देखा गया है।

सत्ययुगमें हजारों-हजारों वयों तक वायु भवण करके और सिरके बल खड़े रहकर कठोर तपस्या और ध्यानादिके द्वारा बहुत कष्टसे साधक जो लाभ करते थे, अजामिलने बिना कष्ट उठाये, वडे सुखसे ही श्रीनाम संकीर्तन द्वारा उससे श्रेष्ठ गति प्राप्त की थी।

ब्रेतायुगमें रत्नाकरके समान महापापी भी जिसके संग व स्पर्शकी बात तो दूर रही, केवलमात्र दर्शनसे ही तालाब और कुपेंका जल सुख गया था, श्रीहरिनाम कीर्तन द्वारा समस्त पांपोंसे छुटकारा प्राप्त कर अति श्रेष्ठ मुनियोंकी पदवीको प्राप्त कर लिया था। अस्तु दूसरे-दूसरे युगोंमें श्रीहरिनामका माहात्म्य अन्य युगोंके (यज्ञ, ध्यान, तपस्यादि) साधनोंसे न्यून है ऐसी बात नहीं है। परन्तु प्रत्येकका अधिकार एक समान न होनेके कारण श्रीहरिनाम जैसे श्रेष्ठ साधनमें सबकी रुची नहीं थी। इसलिये अन्य युगोंमें आढ़म्बरपूर्ण साधनोंमें ही सर्व साधारणको रुची थी।

कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि केवल कलियुगमें ही हरिनामका महत्त्व अधिक है, दूसरे युगोंमें इसका इतना अधिक महत्त्व नहीं था अथवा कलिमें जीव अन्यान्य कठिन साधनोंके लिये सर्वथा अयोग्य होनेके कारण उनके लिये इस सरल और सबसे हेय हरिनामकी व्यवस्था दी गई है। परन्तु वास्तवमें ऐसी बात नहीं है। सत्य, ब्रेता और द्वापरके अनाधिकारी व्यक्तियोंके समान कलिकालके अनेकों मनुष्य इसी कारण श्रीनाम प्रहृणके प्रति उदासीन हो उसका अनादर करते हैं और अन्यान्य साधनोंमें रुचिपूर्वक लगे हुए देखे जाते हैं। अब विचारणीय

यात यह है कि अन्य युगोंमें जीवोंमें अधिक सामर्थ्य थी, उनके लिये श्रीहरिनामके अलावा दूसरे साधनोंकी भी व्यवस्था थी अर्थात् उस समय जीवोंका हृदय कलियुगी जीवोंके समान पापोंसे आच्छादित नहीं था। इसलिये दूसरे-दूसरे साधन मार्ग भी भक्तिके अधीन अनुष्ठित होते थे। परन्तु कलियुगी जीव उस शक्ति सामर्थ्यसे वंचित रहनेके कारण कलिकालमें अन्यान्य साधन निपिछा हैं और एकमात्र श्रीहरिनामकी ही विधि है—

हरेनाम हरेनाम हरेनामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

कलिसन्तरण उपनिषद् और पद्मपुराणादि शास्त्रोंने एक स्वरसे कलियुगी जीवोंको श्रीहरिनाम प्रहण करने तथा दूसरे साधनोंको परित्याग करनेका उपदेश दिया है। 'हरेनाम' पदका प्रयोग एकबार न हांकर तीन बार किया गया है। इसका क्या प्रयोजन है? इसभी ज्ञान-वीन करना जहरी है; तीनबार उल्लेखसे त्रिसत्य प्रतिज्ञा सूचित होती है। शास्त्र इस प्रकार कहते हैं—“हरिनाम ही कलिकालका एकमात्र साधन है।” परन्तु पापमलीन चित्तके मनुष्योंको तब भी विश्वास नहीं होता। इसी कारणसे 'हरेनाम' पदके साथ हर बार 'एव' पदका प्रयोग हुआ है। 'एव'का अर्थ है—निश्चय। अतएव 'एव' पदके द्वारा हृदता एवं निश्चयताका भाव प्रकाशित हुआ है।

तथापि दुर्भागा मानव विचार करता है कि साधारण हरिनाम द्वारा क्या कभी कर्म-ज्ञान-योगादि साधनोंद्वारा प्राप्त की जानेवाली वस्तु प्राप्त की जा सकती है? इतने धूम-धामसे सम्पन्न होनेवाले याग, यज्ञ, पूजा और योग द्वारा पाये जानेवाले कज़ क्या केवल हरिनाम करनेसे पाये जा सकते हैं? उनके इस सन्देहको दूर करनेके लिये शास्त्रोंने 'केवलम्' पदका प्रयोग किया है अर्थात् केवल हरिनाम ही कर्त्तव्य है, इसके साथ कर्म, ज्ञान और योगादिका सम्बन्ध न होनेसे पूर्ण फल लाभ न होगा—इस विचारका खण्डन करते हैं। इसे और

भी स्पष्ट करनेके लिये साज्जात रूपमें निषेध बाक्य द्वारा जोर-जोरसे कहते हैं—‘नास्ति’, ‘नास्ति’, ‘नास्ति’। तीन बार इचारण द्वारा त्रिसत्य प्रतिज्ञाका स्मरण करा रहे हैं। एवं अधिक हृदता दिखानेके लिये तीनों पदोंके साथ ही ‘एव’ पद व्यवहृत है। अर्थात् हरिनामके अतिरिक्त अन्य मार्ग या साधन कलिकालमें सम्पूर्ण रूपसे वर्जित है—यह दिखाते हैं। जो लोग शास्त्रकी आज्ञा नहीं मानते हरिनामको छोड़ कर अन्यान्य मार्ग—साधनोंकी ओर दौड़ते हैं—वे शास्त्र या भगवत चरणोंमें अपराधी हैं तथा इस अपराधके कारण केवल अधोगतिको प्राप्त होते हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। कलियुगी जीवोंकी दुर्दशाको देखकर कहणावस्थालय श्रीचैतन्य महाप्रभुजी इस धराधाम पर अवतीर्ण हुए थे, शास्त्रोंमें छिपी हुई उक्त वाणीका जीवोंके सामने प्रकाश किये। इससे पूर्व यह मन्त्र सबकी हृषिसे ओमल ही होता आया है। श्रीहरिनाम श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा ही आत्म प्रकाश करेंगे, इसीलिये इतने समय तक वे तब तक अपनेको छिपाकर गुप्त रूपसे विद्यमान थे।

श्रीमन्महाप्रभु इस श्लोकके आविष्कारक ही नहीं हैं, अधिकन्तु इस श्लोकके साज्जात मूर्त्ति भी हैं। वे इस श्लोकके 'केवलम्' पदके मूर्त्तिमान चार्दर्शी थे एवं इसके द्वारा 'केवल'के शुद्ध स्वरूपको प्रत्यक्ष दिखाकर जगतको शिक्षा दिये हैं।

इसीलिये उन्होंने अपनी लीलामें सर्वत्र ही कर्म, ज्ञान और योगादि मार्गोंकी हेतु प्रदर्शित की है तथा नामात्मक भक्ति योगको दूसरे मतोंके साथ कहीं भी समान अधिकार या एक समान नहीं बतलाया है। उन्होंने श्रीहरिनामको असमोद्धु तत्व (जिससे बड़ा अथवा जिसके समान कोई नहीं है) कहा है। श्रीहरिनाम और श्रीहरि अभिज्ञ हैं—यह भी उन्होंने शास्त्रकी बाणियोंके बल पर प्रमाणित कर दिया है—

नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्य-रस विग्रहः ।
पूर्णः शुद्धो नित्य सुक्ष्मोऽभिज्ञत्वाज्ञामनामिनः ॥
(पद्म पुराण)

पद्म पुराण द्वारा उन्होंने यह भी दिखलाया है कि “धर्म-ब्रत-त्याग-होमादि शुभ क्रियाएँ केवल प्रमाद मात्र हैं। अतएव श्री हरिनामके साथ अन्याय शुभ क्रियाओंको समान समझनेसे नाम भजन नहीं हो सकता। बल्कि इससे श्रीनामके चरणोंमें अपराध संग्रह होगा—यही श्रीमन्महाप्रभु और समस्त शास्त्रोंकी शिक्षा है।

श्रीनाम भजन ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है—यही सर्व शास्त्रोंका अभिमत है। सर्वशास्त्र शिरोमणि श्रीमद् भागवत् कहते हैं—

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्माः परः स्मृतः ।

भक्तियोगो भगवति तत्त्वाम-ग्रहणादिभिः ॥

अर्थात् जीवोंको अनेकानेक धर्मोंमें रुची होनेपर भी सब धर्म एक स्तरके नहीं हैं। निरपेक्ष भावसे विचार करनेसे देखा जाता है कि सर्वेश्वर भगवान् विष्णुके श्रीनाम ग्रहण द्वारा अनुष्ठित भक्तियोग ही परमधर्म है।

शास्त्रोंने बहुतसे स्थानोंमें इसी प्रकार परधर्म क्या है, बतलाकर यह निर्णय किया है कि समस्त मर्तोंके अनुसार पृथक-पृथक साधन होनेपर उनके जो कल होते हैं, वे एक समान नहीं होते। बल्कि उन कलोंमें तारतम्य होता है। शास्त्रने सब मर्तोंको एक नहीं कहा है। सब पर तुलनामूलक विचार किया है, तथा भक्तिपथके ही सदा-सर्वदा श्रेष्ठतम् स्थापन किया है। गीता शास्त्रकी सम्यक रूपसे आलोचना करनेसे देखा जाता है कि गुण, गुणतर, गुणतम व सर्वगुणतम प्रभृति (इत्यादि) तारतम्यमूलक शब्दोंके प्रयोग द्वारा ‘सब मत एक हैं या समान हैं—इसका निषेध किया गया है, तथा अन्तमें शरणागति मूलक भक्ति धर्मकी ही प्रतिष्ठा की गई हैं। इसलिए अन्य सब धर्मोंके त्यागकी विधि भी शास्त्रोंने दी है। जैसे—

“सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं वज ।”

सब धर्मोंको परित्याग करके विष्णुभक्तिको आश्रय करनेका उपदेश ही सब जगह देखा जाता

है, किन्तु कहीं भी विष्णुको त्यागकर अन्य उपासना की विधि वहीं देखी जाती है; किसी मोहके कारण या दुर्भाग्यवशतः कोई यदि इसप्रकार कर ले तो शास्त्रोंमें उसकी बहुत निन्दा की गई। जैसे—
वासुदेवं परित्यज्य यो अन्यदेवमुपासते ।
तत्त्वामृतं स मूढात्मा सुक्ते हलाहलं विषम ॥

(स्कंद पुराण)

अर्थात् जो व्यक्ति वासुदेवको छोड़कर दूसरे-दूसरे देवताओंकी उपासना करता है, वह मूढात्मा अमृत छोड़कर हलाहल पान करता है।

सर्वशास्त्र शिरोमणि श्रीमद्भागवतमें दूसरे-दूसरे मर्तों या धर्मोंसे भक्तिको स्पष्ट रूपमें श्रेष्ठ कहा गया है—

न साधयति मां योगो न साध्यं धर्म उद्भव ।

न स्वाध्य यस्तपत्यागो यथा भक्तिमर्मामोर्जिता ॥

(चा. १११४२०)

अर्थात् मेरे प्रति ऐकान्तिकी भक्ति जिस प्रकार मुझे अधीन या वशीभूत कर लेती है, सांख्यज्ञान या योगादि साधन वैसा नहीं कर सकते। उपनिषद् में भी भक्तिकी महिमा प्रदर्शित हुई है। जैसे—

भक्तिरेवैन नयति भक्तिरेवैन दर्शयति ।

भक्तिवशः पुरुषो भक्तिरेव भूयसी ॥

युक्तिकी हष्टिसे देखने पर भी यही सिद्ध होता है, कि यह जगत् परजगतका प्रतिविम्ब (छाया) है। मूल विम्बमें जो कुछ होता है, इस जगतमें उसीका हेय प्रतिफलन परिलक्षित होता है। इस जगतमें ऐसी कोई भी दो वस्तुएँ नहीं हैं जो सब प्रकार से समान हों, दोनोंमें कुछ न कुछ भेद अवश्य ही रहता है। एक ही माता-पिताकी दो सन्तानें सब प्रकार समान नहीं होतीं। यदि प्रतिविम्बमें इस प्रकार देखा जाता है, तब मूलविम्बमें वैसा ही नित्य-भेद अवश्य ही स्वीकार्य है। विशेषराहित्य ब्रह्मका धर्म नहीं है, परन्तु विशेषता (विचित्रता) ही ब्रह्मका स्वभाव है। बल्पूर्वक ब्रह्मको निर्विवेश कह “देने से ही वह निर्विवेश नहीं हो सकता है। शास्त्रोंमें

बहाको चिविपेश कहनेका अर्थ ही है—जड़ीय दैशिष्ट्यको निपेश करके चिद् वैशिष्ट्य स्थापन करना। वर्तमान युगमें सब समान हैं—यह विचार हास्यास्यद है। धनी, दरिद्र, पण्डित-मूर्ख, शिक्षित, अशिक्षित, साधु व ठग, सत् व आमत्—ये विशेषताएँ या विचित्रताएँ कभी भी मिटाई नहीं जा सकती। सब समान हैं, यह शोर-गुल सब समय मौखिकमात्र रहा है और रहेगा। कार्य रूपमें यह कभी भी परिणत नहीं हो सकता है। इसका कारण यह है कि मूल वस्तु ही वैशिष्ट्यमय है। अतएव धर्म-ज्ञेत्रमें भी वैशिष्ट्य है। इसलिये सब मतोंका कभी भी एक फल नहीं हो सकता।

वर्तमान स्वेच्छाचारी युगमें—सब समानके युगमें, सर्वधर्म समन्वयके युगमें, सभी विभागोंमें उच्छृङ्खलता-निरंकुशताका नज़ारा नाच हो रहा है। उच्छृङ्खलताको ही उदारता कहा जा रहा है। 'सब समान' मन्त्रके कुफलका समाजपर ऐसा प्रभाव पड़ा है कि बालक बूढ़ोंका सम्मान नहीं करते, छोटे गुरुजनोंकी भक्ति नहीं करते और मूर्ख पण्डितोंके प्रति अद्भा नहीं करते। इस प्रकार 'सब समान'—मन्त्रके कुफलका क्या धार्मिक, क्या सामाजिक, क्या राजनैतिक, क्या आर्थिक-और्योगिक—सभी लोगों पर बड़ा ही बुरा प्रभाव पड़ा है। आजका उच्छृङ्खल विश्व धर्मसंघ के कगारसे छलांग मारने के लिये भाँक रहा है। ऐसी दशामें सामाजिक जीवन अपनी रक्षाके लिये व्याकुल हो पड़ा है। परन्तु उसकी हाथि जड़वाद के चाकचिकयपूर्ण धर्मशक्तारी सभ्यतासे ऊपर उठ नहीं पाती। उसके सीमित भौतिक साधनोंसे उसकी रक्षा होना कठिन ही नहीं सम्पूर्ण असंभव है। आज के उदार (?) शिक्षित नानात्म और विशेषताओंको ही आसन्न विपद्की जड़ मानते हैं। इसलिये सभी

एक हैं अथवा सभी समान हैं का आपात मधुर नारा बुलान्द कर सर्व धर्म-समन्वय द्वारा विश्व शान्ति करनेको प्रयत्नशील है। परन्तु फल विपरीत होता है।

आजके भौतिक जड़वादके युगमें सर्वधर्म समन्वयका अर्थ किया जाता है—सब समान हैं। यह अर्थ ही हमारे पतनका मूल है, इसे हम ऊपर दिखला नुकेहैं। वास्तवमें समन्वय शब्दका अर्थ है—यथायोग्य। जैसे, किसी पद्यांशके कर्ता, कर्म और क्रिया आदिको यथा योग्य स्थानपर प्रतिष्ठा करना ही उसका अन्वय है, ठीक उसी प्रकार कर्म, ज्ञान, योग और भक्ति आदि विभिन्न मतोंमें से भक्तिको सर्वश्रेष्ठ आसन प्रदान कर दूसरे मतोंको यथायोग्य मर्यादा प्रदान करनी ही समन्वयका यथार्थ अर्थ है। परन्तु आज इस उद्देश्यके विपरीत कार्य हो रहा है। इसलिये आजका उच्छृङ्खल और दांभिक समाज आत्यन्त दीन-हीन होनेपर भी अपनेको दीन-हीन माननेके लिये तैयार नहीं। उसके आहार-विहार, आचार-विचार और धर्म-चिन्तनमें तामसिक भाव प्रवेश करने पर भी वह सत्त्वगुणसम्पन्न सदाचारी सद्गमीवलम्बी सन्तोंके सहित समान मर्यादा दावी करनेमें भी लज्जा बोध नहीं करता। इसलिये सम्प्रदायकी सीमा लोडकर तमोगुणकी प्रतिष्ठाके लिये सत्-सम्प्रदायोंके विरुद्ध जेहादकी धोषणाकर आसुरिक स्वभावका परिचय देता है—यही कलिकालकी वृत्ति है। परन्तु इससे संत समाज तनिक भी भयभीत या विस्मित नहीं। वे यह जानते हैं कि असत्यकी कभी भी प्रतिष्ठा नहीं है। तामसिक कालके अनुकूल रूपमें कुछ दिनों तक प्रवल रहने पर भी शीघ्र ही वह दैवी शक्ति द्वारा ध्वंश हो जायगा।

(क्रमशः)

— त्रिदिविड स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराज

जैव-धर्म

तैतीसवाँ अधाय

[गतोंकमे आगे]

विजय—प्रभो ! सब मिला कर कितनी प्रकारकी नायिकाएँ होती हैं ?

गोस्वामी—‘नायिकाएँ’ पंद्रह प्रकारकी होती हैं। कन्या-केवल मुग्धा होती है; अतः वह एक ही प्रकार की होती है। मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा भेदसे नायिका तीन प्रकारकी होती है। मध्या और प्रगल्भा पृथक् धीरा, अधीराओं और धीराधीरा भेदसे तीन-तीन प्रकारकी होती हैं। कुल सात प्रकारकी स्वकीया नायिका होती है। उसी प्रकार परकीया भी सात प्रकारकी हैं। अब कुल मिला कर $7+7+1=15$ प्रकारकी नायिकाएँ होती हैं।

विजय—‘नायिकाओंकी अवस्थाएँ’ कितनी प्रकार की होती हैं ?

गोस्वामी—‘अभिसारिका, वासकसज्जा, उत्कंठिता, खण्डिता, विप्रलध्या, कलहान्तरिता, प्रोपित-भर्तुका और स्वाधीनभर्तुका—ये आठ अवस्थाएँ हैं। पूर्वोक्त पंद्रह प्रकारकी नायिकाओंमें ये आठों अवस्थाएँ होती हैं।

विजय—अभिसारिका कौन हैं ?

गोस्वामी—‘जो कान्तको अभिसार करती हैं तथा स्वयं अभिसार करती हैं, वे अभिसारिका नायिका हैं। जो शुक्ल पचमें सफेद वस्त्र पहन कर अभिसार के लिये गमन करती हैं—वे ज्योत्स्नाभिसारिका कहलाती हैं एवं जो कृष्णपचमें काले झङ्के कपड़े पहन कर यात्रा करती हैं, वे तमोभिसारिका कहलाती हैं। अभिसारमें गमन करनेके समय वह चिलकुल निःशब्द, नखसे शिख तक अलंकृत, लज्जासे मानो अपने अङ्गोंमें समायी हुई तथा एक स्निग्ध सखीके साथ होती है।

विजय—वासकसज्जाके सम्बन्धमें बतलाइये ।

गोस्वामी—‘अपने अवसरके अनुसार कान्ति आवेंगे—हस आशासे जो नायिका अपनी देह-सज्जा और गृह-सज्जा प्रस्तुत रखती हैं, वे ‘वासकसज्जा’ कहलाती हैं। स्मर क्रिङ्गासंकल्प, कान्तकी राह देखना, सखीके साथ कान्तकी लीला-कथा अवण-कीर्तन, बारम्बार दूतीकी प्रतीक्षा करना—यह सब वासक-सज्जाकी चेष्टाएँ हैं।

विजय—उत्कंठिताके सम्बन्धमें बतलाइये ।

गोस्वामी—‘निरपराध नायकके आनेमें देर होने पर जो नायिका अत्यन्त उत्कंठित और उत्सुक हो पड़ती है, वह उत्कंठिता नायिका कहलाती है। हृदय-में ताप, शरीरमें कम्प, मनमें विरक्ति (कान्त क्यों नहीं आये—ऐसा सोचकर), प्रत्येक कार्यमें विरक्ति, वाघ्यमोचन एवं अपनी दशाका वर्णन करना—यह सब उत्कंठिताकी चेष्टाएँ होती हैं। वासकसज्जाकी दशा भी अन्तमें उत्कंठाके रूपमें बदल जाती है, जिस समय वासकसज्जा नायककी नियत समय तक प्रतीक्षा करके भी उन्हें आसे न देखकर मान करनेके बदले यह सोचती है कि वे दूसरी नायिकाके वशमें हो गये होंगे शायद इसीलिये आ नहीं सके। इस दशामें प्रियतमके सङ्गके अभावमें वह अतिशय उत्कंठित और उत्सुक हो पड़ती है। तब वह उत्कंठिता नायिका कहलाती है।

विजय—खण्डिता कौन हैं ?

गोस्वामी—‘नियत समयके बीत जाने पर रातके अन्तिम प्रहरमें जिस समय नायक दूसरी नायिका के भोगचिह्नोंको धारणकर उपस्थित होता है, उस समय जो नायिका क्रोधके मारे दीर्घनिश्वास लेती है

और नायिके कुछ भी नहीं बोलती है तथा उसकी तरफ से मुख फेर लेती है, वह खण्डिता नायिका कहलाती है।

विजय—विप्रलब्धा कौन हैं ?

गोस्वामी—‘आनेका संकेत करके भी दैवयोगसे जब प्राणवल्लभ नहीं आ पाते, तब नायिका विरह व्यथासे व्याकुल हो पड़ती है—ऐसी नायिका को विप्रलब्धा नायिका कहते हैं। निवेद, चिन्ता, खेद, अशु, मूच्छर्छा दीर्घनिश्वास आदि अनेक प्रकारकी उनकी चेष्टाएँ हुआ करती हैं।

विजय—कलहान्तरिता कौन हैं ?

गोस्वामी—सखियोंके सामने अपने पैरों पर पढ़ते हुए प्राण-वल्लभको देखकर भी जो नायिका उन्हें बुरा-भला कहती है तथा निषेध करती है, उसे कलहान्तरिता नायिका कहते हैं। उसमें प्रलाप, सन्ताप, म्लानि, दीर्घनिश्वास, आदि चेष्टाएँ लक्षित होनेके कारण उसे कलहान्तरिता कहा जाता है।

विजय—प्रोषितभर्तुं का कौन हैं ?

गोस्वामी—‘कान्तके दूर देशमें चले जानेपर नायिका प्रोषितभर्तुंका कहलाती है। प्रियतमका गुण-गान, दैन्य, कृशता, जागरण, मलीनता, जड़ता और चिन्ता आदि उनकी आनेक प्रकारकी चेष्टाएँ होती हैं।

विजय—स्वाधीनभर्तुंका कौन हैं ?

गोस्वामी—प्रियतम जिनके अधीन होकर सर्वदा उनके निकट रहते हैं, उनको स्वाधीनभर्तुंका कहते हैं। बनलीला, जलक्रीडा, पुष्पचयन आदि उनकी विविध प्रकारकी चेष्टाएँ होती हैं।

विजय—तब तो स्वाधीनभर्तुंका की दशा बड़ी ही आनन्दजनक होती है।

गोस्वामी—जिस स्वाधीनभर्तुंका नायिका के प्रेम-के वशमें होकर नायक एक ज्ञानके लिये भी उसे त्याग करनेमें समर्थ नहीं होता, उस स्वाधीनभर्तुंका नायिका को ‘माधवी’ कहा जाता है। आठ प्रकारकी नायिकाओंमें स्वाधीनभर्तुंका, वासक-सज्जा और अभिसारिका—ये तीन प्रकारकी नायिकाएँ प्रसन्न-

चित्तसे अलंकार आदि धारण करती हैं। खण्डिता, विप्रलब्धा, उल्कंठिता, प्रोषित-भर्तुंका और कलहान्तरिता—ये पाँचों अलंकार आदिसे रहित होती हैं तथा वाँचे गाल पर हाथ रख कर खेद करती हैं। चिन्तासे इनका हृदय सन्तप्त होता है।

विजय—‘कृष्णप्रेममें सन्ताप कैसे ? इसका तात्पर्य क्या है ?

गोस्वामी—‘कृष्णप्रेम चिन्मय होता है। अतएव परमानन्दरूप सन्ताप आदि भी परमानन्दकी ही विचित्रताएँ हैं। जड़ जगत्का सन्ताप वास्तवमें बड़ा ही दुखदायी होता है; परन्तु चित् जगत्में वह आनन्दके विकारके रूपमें होता है। आस्वादनके समय चिन्मय रसके रूपमें बड़ा ही सुखजनक होता है; परन्तु वाणी द्वारा उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता है।

विजय—इन नायिकाओंमें प्रेमका तारतम्य कैसा होता है ?

गोस्वामी—ब्रजेन्द्रनन्दनके प्रति नायिकाके प्रेमके तारतम्यके अनुसार उत्तमा, मध्यमा और कनिष्ठा भेदसे नायिका तीन प्रकारकी होती हैं। जिस नायिकाका कृष्णके प्रति जिस परिमाणमें भाव होता है, कृष्णका भी उस नायिकाके प्रति उसी परिमाणमें भाव होता है।

विजय—उत्तमाका लक्षण क्या है ?

गोस्वामी—उत्तमा नायिका अपने प्रियतम—नायकके ज्ञानभरके सुखके लिये अस्त्रिल कर्मोंका त्रैणके समान परित्यागकर देती हैं। यदि नायक इस कोटिके नायिकाको दुःख भी देते हैं, तो भी उस नायिकाके हृदयमें असूया उत्पन्न नहीं होती। यदि कोई भूठ-मूठ बनाकर भी वैसी नायिकाके पास नायकके दुःख-की चर्चा कर देता है, तो उसका हृदय फटने लगता है।

विजय—मध्यमाका लक्षण बतलाइये।

गोस्वामी—नायकका दुःख सुनकर इनका चित्त सिन्नमात्र होता है।

विजय—कनिष्ठाका क्या लज्जण है ?

गोस्वामी—जो नायिका कृष्ण-मिलनमें लोक-लज्जा आदि बाधाओंसे ढरती है, वह कनिष्ठा कहलाती है।

विजय—नायिकाओंकी कुल कितनी संख्या है ?

गोस्वामी—कुल मिलाकर ३६० प्रकारकी नायिकाएँ होती हैं। जैसे, पहले पन्द्रह प्रकारकी नायिकाएँ; फिर वे सभी आठ-आठ प्रकारकी होती हैं अर्थात् $12 \times 5 = 120$ प्रकारकी हुईं। पुनः कनिष्ठा, मध्यमा और उत्तमा भेदसे $120 \times 3 = 360$ प्रकार की हुईं।

विजय—नायिकाओंका वृत्तांत सुन लिया अब युथेश्वरियोंमें परस्पर क्या भेद हैं, जाननेकी उत्कंठा हो रही हैं, उसे बतलानेकी कृपा करें।

गोस्वामी—युथेश्वरियोंमें स्वरूप, विष्णु और तटस्थका भेद है। पुनः सौभाग्यके तारतम्यसे वे अधिका, समा और लघु भेदसे तीन प्रकारकी होती हैं। पुनः प्रखरा, मध्या और मृद्दी भेदसे और भी तीन भागोंमें वे विभक्त हैं। प्रगल्भ वचनोंवाली नायिका—जो बातोंही बातोंमें अपना दुःख और कोध प्रकट करती है—प्रखरा कहलाती है। मधुर वाणियोंवाली नायिका मृद्दी कहलाती है तथा इन दोनोंके बीचवाली मध्या नायिका है। आत्यन्तिकी और आपेक्षिकी भेदसे अधिका-नायिका दो भागोंमें विभक्त हैं। जिनके न तो कोई बराबर है और न समान ही है—वे श्रीमती राधा ही मध्या हैं। उनके समान ब्रजमें कोई भी नहीं है।

विजय—आपेक्षिक अधिका कीन हैं ?

गोस्वामी—‘युथेश्वरियोंमें जो नायिका एक अथवा कुछ युथेश्वरियोंसे श्रेष्ठ होती हैं, उन्हें आपेक्षिक अधिका कहा जाता है।

विजय—आत्यन्तिकी लघु कीन हैं ?

गोस्वामी—‘जिस नायिकाकी अपेक्षा दूसरी सभी नायिकाएँ श्रेष्ठ होती हैं, वह आत्यन्तिकी लघु है। आत्यन्तिकी अधिकासे सभी नायिकाएँ लघु होती हैं। आत्यन्तिकी लघुको छोड़कर सब युथेश्व-

रियाँ अधिका हैं। अतएव आत्यन्तिकी अधिका युथेश्वरीमें न तो समत्व की और न लघुत्वकी ही समावना है। साथ ही आत्यन्तिकी लघुमें अधिकत्वकी भी समावना नहीं है। समालघु एक ही प्रकारकी होती है। मध्या युथेश्वरी अधिकाप्रखरा आदि भेदसे नीं प्रकारकी होती है। अतएव युथेश्वरियोंके बारह भेद हैं—(१) आत्यन्तिकाधिका, (२) समालघु, (३) अधिक मध्या, (४) सममध्या, (५) लघुमध्या, (६) अधिकप्रखरा, (७) समप्रखरा, (८) लघुप्रखरा, (९) अधिक मृद्दी, (१०) सममृद्दी, (११) लघुमृद्दी, और (१२) आत्यन्तिक लघु।

विजय—अब दूती-भेद जानना चाहता हूँ।

गोस्वामी—कृष्ण-संगमके लिये उत्कंठित नायिकाओंकी सहायताके लिये दूतीकी आवश्यकता होती है। दूती दो प्रकारकी होती हैं—स्वयंदूती और आपदूती।

विजय—स्वयं दूती कीन हैं ?

गोस्वामी—आत्यन्त उत्सुकताके कारण लज्जा दूर हो जाती है। अनुरागसे मोहित हुई जो नायिका लज्जारहित होकर स्वयं ही नायकके प्रति अपना भाव प्रकाश करती है, उसे स्वयंदूती कहते हैं। वह अभियोग प्रकाश तीन प्रकारसे होता है—कायिक, वाचिक और चाकूप (आँखोंका)।

विजय—वाचिक अभियोग किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—व्यंग ही वाचिक अभियोग है। व्यंग दो प्रकारके होते हैं—शब्द व्यंग और अर्थ व्यंग। व्यंग कभी कृष्णको विषय बनाकर और कभी सामनेकी कोई वस्तु को विषय बनाकर कार्य करता है।

विजय—कृष्णविषयक व्यंग कैसा होता है ?

गोस्वामी—कृष्णको साक्षात् और व्यपदेश रूपमें विषय बनानेवाले व्यंग दो प्रकारके होते हैं।

विजय—साक्षात् कैसा होता है ?

गोस्वामी—गर्व, आक्षेप और यांचा (माँगता) भेदसे व्यंगरूप अभियोग अनेक प्रकारका होता है।

विजय—आचेश्वर्यंग किसे कहते हैं?

गोस्वामी—‘आचेपके द्वारा शब्दोत्थ व्यंग एक प्रकारका होता है तथा अर्थोत्थ-व्यंग दूसरे प्रकारका होता है। तुमलोग स्वयं अलंकारिक हो, इसलिये उद्धरण देनेकी आवश्यकता नहीं समझता।

विजय—अच्छी बात है। याचना द्वारा व्यंग कैसा होता है?

गोस्वामी—स्वार्थ और परार्थ भेदसे यांचा व्यंग दो प्रकारका होता है। फिर दोनोंमें अलग-अलग शब्द व्यंग और अर्थ व्यंग होते हैं। इन शब्दोंमें भाव संयुक्त कर सांकेतिक यांचा होता है। स्वार्थ यांचाका तात्पर्य अपनी बात अपनेसे ही बोलना है। परार्थ यांचाका तात्पर्य है—दूसरोंकी बात दूसरोंद्वारा कहा जाना।

विजय—साक्षात् व्यंग समझ गया। कृष्णके प्रति नायिकाओंकी बातोंमें जो साक्षात् अभियोग बाक्य होते हैं, उनमें शब्द व्यंग और अर्थ व्यंग होते हैं। नाटक और नाटिकाओंमें उनका प्रयोग देखा जाता है। कवि उन्हें शब्द चातुरी द्वारा प्रकाश करते हैं। कृपया अब व्यपदेश कैसा होता है, बतलाइये?

गोस्वामी—अलङ्कार शास्त्रके ‘अपदेश’ शब्दसे ही परिभाषिकी संज्ञाके रूपमें ‘व्यपदेश’ शब्द है। अपदेशका अर्थ व्याजसे अर्थात् एक बातके बहाने किसी दूसरे गूढ़ तात्पर्यको व्यक्त करना होता है। तात्पर्य यह कि कृष्णसे ऐसी एक बात कहना कि उसका स्पष्ट अर्थ एक प्रकारका होता हो परन्तु व्यंगके रूपमें उसके द्वारा गूढ़ रूपमें सेवाकी याचना समझी जाय; ऐसी बातका नाम ही ‘व्यपदेश’ है। यह व्यपदेश दूतीका काम करता है।

विजय—व्यपदेश एक प्रकारसे छल बाक्यको कहा जा सकता है; याज्ञा उसका गूढ़ अर्थ होता है। अब आगे बतलाइये।

गोस्वामी—कृष्ण सामने रह कर सुन तो रहे हैं, किर भी वे सुन नहीं रहे हैं—ऐसा सोच कर अपने

सामनेके किसी पशु या पक्षी आदिको देख कर जो जल्पना होती है, वह पुरस्थ-विषयगत व्यंग है। यह भी शब्दोत्थ और अर्थोत्थ भेदसे दोप्रकारका होता है।

विजय—आपकी कृपासे यह सब समझ गया। अब आंगिक अभियोग किसे कहते हैं, बतलाइये।

गोस्वामी—अंगुलियोंको चटकाना, बहाना बना कर शीघ्रतासे चढ़ना, भय और लज्जासे अपने अंगोंको ढक लेना, पैरसे भूमि पर लिखना, कानोंको सुजलाना, तिलक रचना, बेश धारण करना, मौहोंको नचाना, सखीको लालिगन करना, सखीको फटकारना, दोठोंको दाँतोंसे दबाना, हार गूँथना, अलंकारोंको बजाना, बाहुमूल उधाइना, कृष्णनामको लिखना, बृक्षसे लताओंका संयोग करना—ऐसी क्रियाओंको कृष्णके सामने करने पर उन्हें आंगिक अभियोग कहते हैं।

विजय—चान्द्रुप-अभियोगके सम्बन्धमें बतलाइये।

गोस्वामी—नेत्रोंका हास्य, आँखोंका आधा-आधा खोलना, आँखोंका नचाना, तिरछी नजरसे देखना, आँखोंमें संकोच, बाँयी आँखसे देखना, कटाक्षणत—यह सब चान्द्रुप अभियोग है।

विजय—स्वयंदूती समझ गया। संकेत मात्र दिया गया है। वह असंख्य प्रकारकी हो सकती हैं। अब आप दूतीके सम्बन्धमें बतलाइये।

गोस्वामी—जो दूती प्राणोंके चले जाने पर भी विश्वास भड़क नहीं करती है अर्थात् गोपनीय बातों का भएडाफोड नहीं करती, जो स्नेहवती और बातचीत करनेमें परम चतुर होती है—ऐसी सर्वगुण सम्पन्न युवतीयाँ ही ब्रजसुन्दरियोंकी दूती होती हैं।

विजय—आपदूती कितने प्रकारकी होती हैं?

गोस्वामी—अमितार्थी, निसृष्टार्थी, और पत्रहारी—ये तीन प्रकारकी आपदूतियाँ होती हैं। इंगित समझकर मिलनसंयोग करानेवाली दूतीको

अमितार्थी कहते हैं। युक्ति द्वारा मिलन करानेवाली दूती निस्तृप्तार्थी कहलाती हैं तथा जो केवल संदेश ले जाती हैं, वे पत्रहारी कहलाती हैं।

विजय—इनके अतिरिक्त और भी कोई आपदूती है?

गोस्वामी—शिल्पकारिणी, दैव-आज्ञा, लिङ्गिनी, परिचारिका धात्रेयी, वनदेवी और सखियाँ भी दूतीके अन्तर्गत हैं। चित्रकारिणी आदि शिल्पकारी चित्रद्वारा मिलन कराती हैं। दैवज्ञादूती राशिफल आदि बतलाकर मिलन कराती है। पौर्णमासी जैसी तपस्वनी वेशधारिणी-लिङ्गिनी दूती है; लवज्ञमंजरी, भानुमती आदि कतिपय सखियाँ परिचारिका दूती

श्रीमती राधिकाकी 'धात्रेयी दूती हैं। वनदेवी वृन्दावनकी अधिष्ठात्री देवी हैं। पूर्वोक्त सखियाँ भी दूती होती हैं। वे वाच्यदूत्य अर्थात् स्पष्ट वचनोंसे तथा व्यंग वचनोंसे दूतीका कार्य करती हैं। उस कार्यमें व्यपदेश, शब्दमूल, अर्थमूल प्रशंसा और आचेप आदि सब तरहके अभियोग लक्षित होते हैं।

यहाँ तक अवण कर विजयकुमार श्रीश्रीगुरु गोस्वामीके चरणोंमें दण्डवत्-प्रणाम कर उनसे विदा हुए और अवणकी हुई बातोंका रास्तेमें चिन्तन करते करते अपने स्थानको लौटे।

यम की त्रास न सहिये

रे मन, गोविन्द के हौ रहिये।

इहि संसार अपार विरत हौ, जम की त्रास न सहियै॥

दुख, सुख, कीरति, भाग अपने आइ परै सो गहियै।

सूरदास भगवन्त भजन करि अन्त बार कछु लहियै॥

श्रीचैतन्य-महाप्रभु

(गल संख्या के पृष्ठ ४६ से आगे)

कल कासी को त्यागि देव चैतन्य सिधारे ।
 तीर्थ राज के तीर जाय वट वृक्ष निहारे ॥
 मनोरथों को पूर्ण सँदा जन के करता है ।
 मानव के दुःख द्वन्द्व काल सम जो हरता है ॥७२॥

उस सुर तरु वर तीर जाय सृदु वचन उचारे ।
 उसके गाके गीत त्रिवेणी तौर पधारे ॥
 हर हरि विधि की प्रिया जहाँ तीनों मिलती है ।
 लाल सितासित रेख मनों चलगति लहती है ॥७३॥

तम सत रज का चारु चिन्ह जगपति हित्यलाया ।
 या संसृति का सार यहाँ विधि ने फैलाया ॥
 यमुना यम का द्वार बन्द करती आती है ।
 फिर पावन पय राशि गंग में मिल जाती है ॥७४॥

गुप्त रूप से मिली यहाँ सुरसुति विधि प्यारी ।
 रख न सकी वह निपट स्वयं को इनसे न्यारी ॥
 पालक संहारक प्रिया सभी के सम्मुख मिलती ।
 किन्तु प्रसव के हेतु गिरा कुछ लड़ा करती ॥७५॥

चैतन्य चारु जल बीच नहाके आश्रम आये ।
 सहित स्वशिष्यों सुधा-गिरा से गुन गन गाये ॥
 रात्रि एक विश्राम किया पुनि तीर्थ तजा है ।
 जो भव में अनि भव्य भाव से सदाँ सजा है ॥७६॥

तीर्थ राज को त्यागि लगन लागी मथुरा की ।
 मत्त मधुप से भक्त खानि है अति सुचिता की ॥
 संसृति-सार, अधार मनुज का, दानव हर्ता ।
 सकल विकल विनि रहत, सदाँ मानव का भर्ता ॥७७॥

यसुदा-यश, नृप-नंद-नदन, गोगोपी प्यारा ।
 वसुदेव देवकी पुत्र, राधिका प्राण अधारा ॥
 श्रीकृष्ण पूर्ण शशि विम्ब सहश संसृति उजियाला ।
 उसने लेकर जन्म जहाँ पितु कारा-डाला ॥७८॥

—श्री शङ्करजाल चतुर्वेदी, पम. प., साहित्य-रत्न

प्रचार-प्रसंग

श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजीका भूलन-महोत्सव
 गत १८ आवण, ३ अगस्त, चुधवार एकादशीमे
 लेकर २२ आवण, ७ अगस्त, रविवार, पूर्णिमा तक
 ५ दिन श्रीश्रीराधा-विनोदविहारीजीका भूलन-महोत्सव
 बड़े समारोहसे सम्पन्न हुआ है। सभामंडप, रत्नमय
 हिंडोला और श्रीमंदिर नानाप्रकारकी आलोक-
 मालाओं, विविध प्रकारके बहुमूल्य रंग-विरंगे वस्त्रों
 और सुन्दर-सुन्दर आभूषणोंसे सुसज्जित हो रहे थे,
 जो दर्शकोंके मन-प्राणको सहज ही आकर्षित कर
 रहे थे। नयी-नयी झाँकियाँ, विराट संकीर्त्तन और
 प्रवचन महोत्सवके मुख्य आकर्षण थे। दर्शकोंकी
 बड़ी भीड़ने प्रतिदिन भूलनाका दर्शन किया और
 हरिकथाका श्रवण किया।

श्रीश्रीउद्धारण गौड़ीयमठ, चुंचुड़ामें भी यह
 महोत्सव बड़े धूमधामके साथ सम्पन्न हुआ है।

श्रीश्रीबलदेव प्रभुकी आविर्भाव-तिथि—

गत २२ आवण, ७ अगस्त, रविवार भूलन-

पूर्णिमाके दिन श्रीश्रीबलदेव प्रभुकी आविर्भाव तिथि
 समितिके समस्त मठोंमें उपवास, संकीर्त्तन और
 भाषण-प्रवचनके माध्यमसे पालित हुई है। श्रीकेशव-
 जी गौड़ीय मठ, मथुरामें उक्त दिवस संध्यारतिके
 पश्चात् एक सभाका आयोजन किया गया था,
 जिसमें श्रीकृञ्जिहारी ब्रह्मचारीजी, श्रीप्रेम प्रयोजन
 ब्रह्मचारीजी तथा श्रीहरिदास ब्रजवासीजीने बड़े ही
 सरल रूपमें श्रीश्रीबलदेव-तत्त्वके सम्बन्धमें बोले। अंत
 में त्रिदण्ड स्वामी भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजी
 ने श्रीश्रीबलदेव-तत्त्वके सम्बन्धमें एक संक्षिप्त भाषण
 दिया, जिसमें उन्होंने—जीवके हृत्यमें श्रीबलदेवका
 चिद्वल संचारित नहीं होनेसे श्रीकृष्ण पाद-पद्मके
 आविर्भावकी उपलब्धि सम्भव नहीं है; श्रीगुरुदेव
 साक्षात् श्रीबलदेवाभिन्न प्रकाशविग्रह है, उनकी कृपा
 से ही कृपणकी कृपा पायी जा सकती है—आदि
 विषयों पर बड़ा ही तात्त्विक विवेचन प्रस्तुत किया।

—निवस्व संवाइदाता

श्रीश्रीब्रजमंडल-परिक्रमाका विराट आयोजन

प्रिय महोदयगण !

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति इस घर्षे पहले-पहले वर्षोंकी तरह श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें
 आगामी १८ आश्विन, ४ अक्टूबर, मंगलवारसे श्रीउर्जव्रत (कात्तिक-ब्रत) का पालन करने जा रही
 है। इसके उपलक्ष्यमें श्रीश्रीब्रजमंडलकी परिक्रमाका विराट आयोजन किया गया है। समितिके
 प्रतिष्ठाता एवं आचार्य परमहंस मुकुटमणि परिव्राजकाचार्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी
 महाराजजी बहुतसे साधु-संत भक्त और सज्जन मंडलीके साथ यहाँ पधार रहे हैं। आगामी २७
 आश्विन, १३ अक्टूबर, वृहस्पतिवारकी रातके दा॥ बजे हावड़ा (कलकत्ता) से एक रिजर्व ट्रेन रवाना
 होगी, जो यात्रियोंको गया, काशी और प्रयाग आदि तीर्थोंका दर्शन कराती हुई श्री मथुरा धामको
 पहुँचेगी। श्रीदामोदर ब्रतके दिनोंमें उपरोक्त स्थान पर प्रतिदिन श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रोंके प्रवचन,
 संकीर्तन, धर्मसभाओं तथा धाम-परिक्रमाका सुन्दर कार्यक्रम है।

प्रार्थना है, आप इष्ट-मित्रों और बन्धुजनोंके साथ उक्त समय पर यहाँ प्रतिदिन पधारकर
 अथवा पूर्णरूपसे योगदान कर भक्ति-दम्भुखी सुकृति अर्जन करें।

निवेदक—श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभ्यवृन्द